सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

संस्थापक सम्पादक तथा संरक्षक

योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष २

अंक ६

वार्षिक मूल्य
१० रुपया

एक अंक
१ रुपया

बाला मैं बैरागण हूंगी ।

जिस भेषा मेरा साहिब रीझे सोई भेष धरूंगी ।
शील सन्तोष धरूँ घट भीतर समता पकड़ रहूंगी ।।
जाको नाम निरञ्जन कहिए ताको ध्यान धरूंगी ।।
बाला मैं बैरागण हूंगी !
गुरु के ज्ञान रंगू तन कपड़ा मन मुद्रा पहरूंगी ।
प्रेम प्रीत से हरिगुण गाऊँ चरणन लिपट रहूंगी ।।
बाला मैं बैरागण हूंगी !
या तन की मैं करूं कींगरी रसना नाम कहूंगी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर साधां संग रहूंगी ।।
बाला मैं बैरागण हूंगी !

—भक्त मीराबाई

दिसम्बर
१९६६

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवांई एत्मादपुर जिला आगरा ।

इस अंक में :—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. उन्मत्त योगी	....	१
२. हमारा कर्माशय	(हमारा विशेष लेख) योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३. श्री गुरु-वन्दना	प्रोफेसर श्री ऋषिराम गुप्ता दिल्ली	१०
४. सत्यम-शिवम् - सुन्दरम्	(श्री वनवासी)	१२
५. पारस का स्वाद		१३
६. योग साधन क्यों और कैसे ?	श्री चन्द्रहास शर्मा एम.ए.,एमएड. आचार्य	१४
७. भजो रे प्रभु रामलाल सुखदाई	श्रीमती कृष्णा वर्मा शामली	२०
८. योग और योगी	श्री ओमप्रकाश पालीवाल	२१
९. शान्ति प्राप्त करने के नियम	प्रो. रामचरण महेन्द्र एम.ए.	२५
१०. मेरे गुरुदेव	प्रोफेसर वीरेन्द्र सिंह वर्मा एम.एस-सी.एजी.	२६
११. कर्म-फल-त्याग	स्व. श्री साने गुरु	३३
१२. विजया दशमी पर्व पर श्री सद्गुरुदेव का जन्मोत्सव	(श्री ओमप्रकाश मित्तल द्वारा प्रेषित)	३८
१३. अलीगढ़ में योग प्रचार कार्य-क्रम	हमारे अपने संवाददाता द्वारा	४६
१४. गुरुदेव-वचनामृत	आज का मानव	५०
१५. ब्रह्मचर्य	टाइटिल का	४
१६. श्री गुरुदेव जी का आगामी कार्यक्रम	"	३

प्रकाशक :—

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन

सवाई एत्मादपुर

आगरा

संयुक्त सम्पादक

श्री 'दिव्य'

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष २ | अङ्क ९

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्"
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महता सिद्धये 'सिद्धयोग:' ॥

दिसम्बर १९६९ ई०

उन्मत्त योगी

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोथ
किं तापसः किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ॥
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाण जनैर्न क्रुद्धा,
पथिनैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥

अर्थ:— क्या यह चण्डाल है या कोई द्विजाति है । शूद्र है तपस्वी है या तत्त्व की ज्ञान बीन में रहने वाला कोई योगेश्वर है। इस प्रकार से रास्ते में चलते हुऐ एक साधु को देखकर नाना प्रकार की बात करते जा रहे है। किन्तु इस प्रकार के आलाप-प्रत्यालाप सुनकर भी वह महात्मा न किसी से द्वेष करते हैं न प्रेम करते है। स्वच्छन्द मन से अपने मार्ग से चले जाते है।

हमारा विशेष लेख

हमारा कर्माशय

(योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

कर्माशय शब्द का अर्थ है 'शुक्लाशुक्ल कर्मणाम् आशय इति कर्माशय।' अर्थात् भोग पर्यन्त जिसमें अच्छे व बुरे कर्मों का संचय रहा करता है उसी स्थान का नाम कर्माशय है। कर्माशय ही समय-समय पर प्रारब्धानुसार अच्छे बुरे कर्मों का भोग मनुष्य को दिया करता है। भगवान् श्री पतञ्जलि देव जी ने कर्माशय को दो भागों में विभाजित करके उसका स्वरूप समझाया है और मनुष्य मात्र को यह शुभ प्रेरणा दी है कि यदि वह तीव्र संकल्प से चाहे तो इस ही जीवन में कुछ थोड़े से साधनों के द्वारा अपने आप को अपूर्व परिवर्तित कर सकता है। भगवान पतञ्जलि देव जी कहते हैं:—

क्लेशमूलः कर्माशय दृष्टादृष्टजन्म वेदनीयः

इसका अर्थ है - संस्कार वशाद्दस्मिन एव जन्मनि दृष्टः फलत्वेनानुभूतश्च कर्माशयो दृष्टजन्म संवेदनीयः। पुनश्च काम लोभ मोह क्रोध प्रसवो देहान्ते परस्मिन जन्मनि अनुभूतः कर्माशयोऽदृष्ट जन्म वेदनीयः।

'अर्थात् संस्कार वशात् काम क्रोध लोभ, मोह आदि से उत्पन्न हुआ कर्माशय तीव्र साधनों के संयोग से इस ही जन्म में अपने पाप पुन्यात्मक भोग को दे दिया करता है।

इस ही का नाम 'दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय' कहा है। जो व्यक्ति कर्म मीमांसा के सिद्धान्त को रूढ़िवाद और न कुछ मानकर अपने आप को हतोत्साह किये रहते हैं उनके लिये यह अनोखा चमत्कारिक साधन है कि वह अपने कर्माशय को 'दृष्ट जन्म संवेदनीय' बनायें। 'दृष्ट जन्म संवेदनीय' का अर्थ है, कि जो कर्म इसी जन्म में किये जायें और उनमें तीव्र संवेग होने के कारण मनुष्य इस ही जन्म में उनका उपभोक्ता हो जाये। जो कर्माशय 'अदृष्ट जन्म संवेदनीय' अर्थात् अन्यान्य दूसरे जन्मों में फल देने वाला उसके लिये तो हर मनुष्य यह कह ही सकता है कि क्या कहा जा सकता है ये दुःख या सुख हमारे कृत कर्मों का उपभोग रूपी फल है। क्योंकि उसके सामने कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जिससे कि वह जान सके कि यह भोग हमारे उन-उन कृत कर्मों का फल है। इसलिये 'अदृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय' पर मनुष्य सहसा कभी

विश्वास करने को तैयार नहीं हो सकता क्योंकि मन नकद धर्मी है। मन हर समय प्रत्याक्षानुभूति का उपासक बना रहता है। वह उसी सिद्धान्त को सत्य मानना चाहता है कि जिसके परिणाम को वह निर्णयात्मक रूप से स्पष्ट जान ले इसलिये कर्ममीमांसा के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाले साधक के लिये यह उत्तम साधन है कि वह तीव्र संवेगेन दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार कर ले और उसके परिणाम को भी इस ही जन्म में देख डाले। भगवान् पतञ्जलिदेव ने दृष्ट जन्म सवेदनीय कर्माशय तैयार करने का निर्देश योगदर्शन में :—

क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः

इस सूत्र में किया है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भी व्यास देव जी ने निम्नांकित पंक्तियां लिखीं हैं :—

'तत्र पुण्यापुण्यकर्माशयः कामलोभ मोह क्रोधप्रसवः, स दृष्टाजन्मवेदनीयश्चा दृष्टजन्मवेदनीयश्च,तत्र तीव्रसंवेगेनमन्त्रतपः समाधिभिर्निर्वर्तित ईश्वरदेवतामहर्षि महानु भावनामाराधनाद्वा यः परिनिष्पन्नः स सद्यः परिपच्यते पुण्यकर्माशय इति तथा तीव्रक्लेशेन भीतव्याधितकृपणेषु विश्वा-सोपगतेषु वा महानुभावेषु वा तपस्विषु कृतः पुनःपुनरपकारः; स चापि पाप कर्माशयः सद्य एव परिपच्यते।,

अर्थात् पापपुण्यात्मक कर्माशय काम लोभ मोह क्रोध से उत्पन्न हुवा हुआ दृष्ट जन्म सवेदनीय (अर्थात् इसी जन्म में किये हुए कर्मों का फल इसी जन्म में देने वाला) तैयार हो जाया करता है। पुण्यात्मक कर्माशय भी तैयार हो जाता है और पापात्मक कर्माशय भी तैयार हो जाता है। पुण्यात्मक कर्माशय तैयार करने के लिये साधक को निम्नांकित उपायों का अवलम्ब लेना पड़ता है

तीव्र सवेग के द्वारा किया हुवा मंत्र का जप, तीव्र संवेग के द्वारा किया हुआ तप एवं तीव्र सवेग (गाढ़ी लगन के साथ लगाई हुई समाधि) बहुत जल्दी ही इस दृष्ट जन्म सवेद-नीय कर्माशय का तयार कर देते है। इसके अतिरिक्त ईश्वर देवता महर्षि आदि महानु-भावों की आराधना से दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय तैयार हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त विश्वासोपगत महानुभावों में या तपस्वी लोगों में बार बार किया हुआ अपकार पाप मूलक दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्मा-शय को तैयार करके उसके फल को देने वाला बन जाता है। इसके उदाहरण में भगवान व्यासदेव ने नन्दीश्वर एवं महाराजा नहुष के उदाहरण लिखे हैं जिस प्रकार नन्दी-श्वर अपना दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्मा-शय का तात्कालिक भोग उपस्थित हो जाने के कारण श्री नन्दीश्वर जी मनुष्य योनि को छोड़ करके देव योनि में बदल गये और राजा नहुष देवताओं का राजा होजाने के

बाद भी ग्रहंकाराविष्ट रहा और ग्रगस्त्यादियों के द्वारा शाप पाकर सर्प योनि को प्राप्त होगया। ये उसके अत्यन्त अहंकार पूर्ण दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय का फल था।

जिस प्रकार से भगवान व्यास देव ने उपरोक्त दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय तैयार करने के चार या पाँच उपायो का अपने भाष्य में वर्णन करने का जिक्र किया है उसको हम अपने इस लेख मे सोदाहरण समझा कर स्पष्ट कर देना चाहते हैं ताकि कोई भी साधक उत्साहहीन न होकर अपने आपको परम श्रेयाभिमुख कर सके। श्री व्यास देवजी ने कहा है :—

"तत्र तीव्र संवेगेन मन्त्रतपः समाधिभिर्निर्वर्तित"

ये तीन साधन है जो असली साधना एवं कर्त्तव्य पर निर्धारित है साधक तीन प्रकार के हुआ करते हैं। मृदु संवेग अर्थात् थोड़ा लगन वाला मध्य संवेग अर्थात् बीच की लगन वाला और तीव्र संवेग इसका अर्थ है बहुत ही उत्कृष्ट लगन वाला। साधकों के मृदु मध्य और तीव्र संवेग तो होते ही हैं किन्तु साधन भी उनको अपनी लगन के अनुरूप मिल जाये तभी वह साधना की पराकाष्ठा को पा सकते हैं। यदि किसी मृदु संवेग वाले साधक को कोई अधिमात्र उपाय की साधना मिल गई तो वह उत्साहहीन होकर आगे नहीं बढ़ सकेगा। उस साधक को वह साधना इतनी अधिक भार रूप दिखलाई देगी जिस प्रकार प्राइमरी स्कूल के किसी बच्चे को डिग्री कालेज की शिक्षायें व्यर्थ भार रूप दिखलाई दिया करती हैं। इसलिये साधन भी साधक के अनुरूप होना चाहिये अन्यथा साधक जहां का तहां रह जायेगा व अपनी प्रगति को ऊँची नहीं बढ़ा सकेगा। भगवान व्यासदेव जी के दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करने के लिये और उसके सद्य परिपचन के लिये पाँच प्रमुख उपायों का वर्णन किया है। उनमें से पहला साधन — मन्त्र का जप, अर्थात् तीव्र लगन के साथ स्वाध्याय संलग्न हो जाना। श्री व्यास देव जी ने स्वाध्याय के दो रूप बतलाये हैं।

प्रणवादि पवित्राणां जपः स्वाध्याय मोक्ष शास्त्राणामध्ययनं वा स्वाध्यायः

अर्थात् परमात्मा के पवित्र नाम ओंकारादियों का जप करना स्वाध्याय कहलाता है या मोक्ष फलप्रद श्री मद्भगवद्गीता उपनिषद् शिव सहस्त्रनाम विष्णुसहस्त्रनाम आदि आदि स्तोत्रों का पाठ करना भी स्वाध्याय कहलाती है। स्वाध्याय का फल भगवान् श्री पतञ्जलिदेव जी अपने योग दर्शन में इस प्रकार बतलाते हैं।

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः।४४।

अर्थात् अनवरत् स्वाध्याय करके से मनुष्य अवश्य ही इष्टदेव की कृपा का लाभ करता है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए श्री व्यास देव जी भी इस सिद्धान्त का पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण करते हैं :—

देवा, ऋषयः, सिद्धाश्च स्वाध्याय शीलस्य दर्शन गच्छति,

अर्थात् देवता लोग ऋषि लोग और सिद्ध महापुरुष स्वाध्यायशील व्यक्ति की आँखों के सामने आया करते हैं और उनके कार्य कर दिया करते हैं। स्वाध्याय के साथ तप का समिश्रण और कर लिया जाये तो सोने पर सुहागे वाली बात बन जाया करती है। तप और स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति बहुत जल्दी ही निःश्रेयस भागी बन जाता है।

तप की साधना :–

भगवान पतञ्जलिदेव ने अपने योग सूत्र में द्वन्द सहनम् तपः कह करके तप का लक्षण किया। द्वन्द सहन का अर्थ है सर्दी गर्मी भूख प्यास आदि के जोड़ों को सहन करना द्वन्दों को प्राप्त हो कर के धीर पुरुष विचलित नहीं होते। तप का अन्तिम फल भगवान पतञ्जलिदेव ने इस सूत्र में इस प्रकार लिखा है —

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥४३॥

अर्थात् तप के द्वारा अशुद्धि के नाश होजाने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि उपलब्ध होती है। श्री व्यासदेव जी के शब्दों में :—

निवर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्ध्यावरणमलं तदावरणमलापगमात् कायसिद्धिः= अणिमाद्या, तथेन्द्रियसिद्धि दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति ॥

अर्थात् उत्तरोत्तर बढ़ाया हुआ तप अशुद्धि के आवरण रूप मल को नष्ट कर देता है और आवरण भंग हो जाने पर कायिक सिद्धि अणिमादि और ऐन्द्रिय सिद्धि दूर दर्शन दूर श्रवण आदि मनुष्य को स्वभाव से ही प्राप्त होती है। आजकल कलिकाल के जमाने में भी तपस्वियों के इस प्रकार के परिणाम बिल्कुल बिल्कुल देखने में आते हैं। मुझे इस संदर्भ में कायस्थ जाति के अन्दर जन्म लेने वाले एक तपस्वी बालक की सच्ची घटना का स्मरण आया। सन १९४१ में आगरा शहर के आगरा कालिज में ओमप्रकाश नाम का एक कायस्थ बालक शिक्षा प्राप्त करता था। श्री कृष्ण चरित्रों को सुन कर के उसके मन में श्री कृष्ण दर्शन की लगन तीव्रता से जग उठी और वह कालिज की शिक्षा छोड़ कर श्री कृष्ण दर्शनार्थ श्री धाम वृन्दावन को चला गया। वृन्दावन में जा करके उसने गुरुकुल भूमि के पीछे श्री यमुना जी के तट पर एक कदम वृक्ष के नीचे बैठ कर अपनी भूख प्यास को सहन कर के तीव्रतम तपश्चर्या आरम्भ की। वह बालक अड़सठ दिन तक जीवित रहा। श्री वृन्दावन के गोस्वामियों ने उसकी जीवनी पर एक पुस्तक लिखी है उसमें उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया है। साठ दिन की तीव्र तपश्चर्या के बाद उसको स्वभाव से ही दूर दर्शन और दूर श्रवण की योग्यता प्राप्त होगई थी और अपने तीव्रतम स्वाध्याय के फलस्वरूप उसको स्थानीय सिद्धों के दर्शन भी प्राप्त हुए। महाराजा उत्तानपाद के बालक ध्रुव ने घनघोर जंगल में जाकर नारदमुनि से मन्त्रोपदेश पाकर के

तीव्रतम तपश्चर्या और स्वाध्याय आरम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप उसको इष्ट देवता सम्प्रयोग हुआ। वह अपने इष्टदेव भगवान नारायण के दर्शन प्राप्त करके कृत कृत्य हो गया। जिस समय उसको तपश्चर्या और स्वाध्याय से प्रसन्न होकर भगवान नारायण ने उसको वरदान देने की इच्छा प्रकट की तो उसने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि प्रभो :—

स्थानाभिलाषी तपसिस्थितो हिम्,
त्वाम् प्राप्तवान देव मुनीन्द्र गुह्यम्
काचं विचिन्व वन नाप दिव्य रत्नम्,
स्वामिन कृतार्थोऽस्मि वरम न याचे।

अर्थात् हे प्रभो ? मैं राज्य पाने की इच्छा से तपश्चर्या में लगा था और अकस्मात् मैं आपको पा गया। कांच को ढूंढने वाला मैं दिव्य रत्न स्वरूप आपको पा गया। हे स्वामी अब मैं कृतार्थ हो गया हूं। मुझे अब वरदान की आवश्यकता नहीं है। वह ध्रुव के तीव्रतम तप और स्वाध्याय का उत्कृष्ट परिणाम था। श्री व्यासदेव जी ने दृष्टजन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार करने का तीसरा साधन समाधि बतलाया है।

समाधि :—

समाधि में उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वृत्तियों का उदय हुआ करता है सर्वार्थता का नाश होता है और एकाग्रता का उदय होता है। मनुष्य के चित्त का यही समाधि परिणाम है। इस का स्पष्टीकरण श्री पतञ्जलिदेव जी ने इस प्रकार किया है :—

सर्वार्थतकाग्रतयो: क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणाम: ॥११॥

अर्थात् सर्वार्थता का नाश होता है और एकाग्रता का उदय होता है, यही चित्त का समाधि परिणाम है। समाधि में साधक का चित्त क्योंकि विवेकख्याति की ओर हुआ करता है और वह उत्तरोत्तर समझता चला जाता है इसलिये सम्प्रज्ञात योग के अभ्यासी उस योगी का पुण्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है और उसका फल यह निकलता है कि प्रति दिन उसके क्लेश क्षय हो जाते हैं। और दृष्ट जन्म संवेदनीय उसका एक उज्ज्वल कर्माशय तैयार हो जाता है जो उस योगी को अपना उत्कृष्ट परिणाम तत्काल दिखा दिया करता है।

भारतवर्ष के इतिहास में इस प्रकार के योगियों के उदाहरण बहुत काफी मात्रा में मिलते हैं। गोपीचन्द भृतृहरी का अमृत लाभ करना समाधि जनित दृष्टि जन्म संवेदनीय पुण्यकर्माशय का ही उज्ज्वल परिणाम था। उनके समान ही और भी भारतवर्ष के योगी हैं जो समाधि के बल से अपने पुण्य प्रारब्ध का भुगतान करके अजरत्व एवं अमरत्व लाभ कर चुके हैं। योगी अपनी साधना के बल से जब कूटस्थ स्थिति में जाया करता है तो वह संसार के विकारों से बिल्कुल-बिल्कुल परे हो जाता है। उसके कर्म अकर्म के रूप में बदल जाया करते हैं। वह करता हुआ भी नहीं करता

खाता हुआ भी नहीं खाता, पीता हुआ भी नहीं पीता, सोता हुआ भी नहीं सोता यही उसकी कूटस्थ स्थिति है जो बिल्कुल विकार रहित हुआ करती है। इस विषय को स्पष्ट करते हुए अखिल लोक पावन जगदात्मा भगवान श्री-कृष्ण ने श्री मद्भगवद गीता के तीसरे अध्याय में स्पष्ट् शब्दों में कह दिया है।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्म,
तृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सतुष्टः,
तस्य कार्यं न विद्यते ॥
नैव तस्य कृतेनार्थो,
नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्व भूतेषु,
कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥

जो मनुष्य आत्म सन्तुष्ट है और अपने आप में ही सन्तुष्ट है उसका संसार में कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। वह कोई कार्य करे या न करे इसका प्राणी मात्र में कोई अर्थ व्यापार नहीं रहता ऐसे कूटस्थ योगी पर कोई भी कर्म फल लागू नहीं होता।

हमारे शास्त्रों में चार प्रकार का कर्म-कलाप कहा गया है उनमें से कुछ कर्म तो इस प्रकार के होते हैं जिनको हम पाप के कर्म कह सकते हैं कुछ पुण्य कर्म कहे जाते हैं। कुछ कर्म इस प्रकार के है जिनको पाप और पुण्य के मिले - जुले कह सकते है। और कुछ कर्म इस प्रकार के होते है जो क्रिया मात्र से ही किए जाते है उनका सम्बन्ध न पाप से ही है और न कर्म से ही है। जिस प्रकार एक व्यक्ति बगीचे में सैर करता हुआ अपने हाथ पैरों को हिलाता है स्वाभाविक ही उस के मन में कई प्रकार के विचार आते रहते हैं और जाते रहते है। किन्तु यह सारा क्रिया-कलाप जो उसकी बिना इच्छा के स्वाभाविक हो रहा है कुशला-कुशला निकमाण के सिद्धान्त नुसार कर्म के जाल में में अन्तर्हित नहीं किया जा सकता इसलिये भगवान पतञ्जलि देव ने योग दर्शन में बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया :—

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिना-
स्त्रिविधमितरेषाम्

इस सूत्र का अर्थ यह है किये जाने वाले कर्म - चार विभागों में विभक्त हैं पाप के, पुण्य के, पाप के और पुण्य के मिश्रित और चौथे न पाप के और न पुण्य के केवल क्रिया रूप। कम कलाप के इस विभाजन में पुण्य के, पाप के, और पाप और पुण्य मिश्रित कर्म आम संसार के जीवों से हुआ करते हैं। किन्तु योगियों के कर्म न पाप के होते हैं न पुण्य के होते हैं। योगी लोग कर्म करते हुए नहीं करते, खाते हुए नहीं खाते, पीते हुए नहीं पीते, सोते हुए नहीं सोते। उनका सब कर्म - कलाप केवल क्रिया मात्र ही हुआ करता है।

यह तो हुई उन उत्कृष्ट योगियो के सिद्धान्त की चीज जो योगी अपनी साधना के बल से कूटस्थ स्थिति में पहुँच चुके हैं। किन्तु जो लोग अभी सम्प्रज्ञात योग के अभ्यासी हैं वह लोग अपने समाधि जनित पुण्य के प्रभाव

दृष्टि जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करते हैं। और उसके फलस्वरूप अपने निकृष्ट प्रारब्ध की यत्किंचित भुगतान में लेकर उज्जल व प्रारब्ध के रूप में परिवर्तित कर लिया करते हैं। जिस प्रकार गंगा के पवित्र प्रवाह में पड़ कर क्षुद्र जल प्रवाह के छोटे छोटे नाले अपने आप को गंगा के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं, इसी प्रकार से समाधि जनित उत्कृष्ट पुण्य के प्रभाव में क्लिष्ट कर्माशय का क्षुद्र भोग थोड़े समय में निबट कर उज्जल पुण्य कर्माशय के फलस्वरुप में परिवर्तित हो जाया करता है। एक स्थान पर एक अच्छे योगाभ्यासी महात्म ने निवास किया उन्होंने अपने ध्यानाभ्यास में देखा आगामी प्रारब्ध भोग में उनको एक सर्प काट खाएगा प्रारब्ध भोग के संस्कारों को देखकर वह यह जान ही गए थे कि उनको सर्प ने अवश्य काटना है तो इसके अनुसार उसको बचाने के लिये उन्होंने भरसक प्रयत्न किया किन्तु वह अपने आपको बचा नहीं सके। ठीक समय पर उनको सर्प ने काट ही लिया। किन्तु क्योंकि वह विवेख्याति की ओर थे इस लिये वह सब प्रभाव उनके सूक्ष्म शरीर पर होकर निबट गये। और वे पूर्ववत् अपनी यथार्थ स्थिति में आ गया। यह था उनके दृष्टि जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करने का उज्ज्वल उदाहरण। समाधि के पुण्य प्रभाव से सर्प काटाने का फल थोड़े समय के भीतर ही भगत गया और समाधि में ही श्री गुरुदेव के द्वारा जो दिव्य उपचार किया गया उसके फलस्वरूप वह तत्काल ठीक हो गये। उनके शरीर में सर्प विष का आभास भी नहीं रहा।

इसी प्रकार एक और योगाभ्यासी महात्मा का मुझे उदाहरण याद आता है। वह महात्मा योगाभ्यासी थे विवेकख्याति की ओर तीव्रता से बढ़ चुके थे। उन्होंने अपने ध्यानाभ्यास में एक दिन अनुभव किया कि ८ दिन बाद उनका आकस्मिक मृत्यु का संयोग बना जा रहा है। उन्होंने ध्यान योग में अपने गुरुदेव से पूछा प्रभो! मेरा यह मृत्यु संस्कार किसी प्रकार पूर्ण हो सकता है। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया बेटा इसके दूर करने में तो कोई कठिनाई नहीं है केवल मात्र कल तुम चावल नहीं खाना तो ये दुःख दूर हो जायेगा। यदि तुम चावल खाओ तो दही न खाना, दही खाओ तो कढ़ी मत खाना किन्तु इन सब वस्तुओं से तुम्हारा संस्कार है तुम अवश्य ही खाओगे। किन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं तुम विवेक ज्ञान की ओर बढ़ रहे हो इसलिये वह परम् सद्गुरु तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। हुआ भी ऐसा ही। जब उनके प्राणान्त का समय आया उन सर्व शक्तिमान ने उनके प्राणों के रक्षा की और उसके बाद दृष्टजन्म संवेदनीय पुण्य से कर्माशय उपार्जित पुण्य से दिव्य प्रारब्ध का भोग प्रारम्भ हुआ। इसलिये जो मनुष्य हर समय भाग्य हो भाग्य पुकारा करते हैं वह अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ खो जाया करते है। नीति शास्त्र का

वचन है —

अर्थात् उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है भाग्य भाग्य कायर पुरुष कहा करते हैं। मनुष्य को अपने आत्म बल के आधार पर पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। पुरुषार्थ करने पर भी यदि विफलता मिले तो समझ लेना चाहिये कि तुम्हारा पुरुषार्थ तुम्हारा इस समय के कर्म विपाक को दबाने में दुर्बल रहा। उसके लिये फिर बार बार प्रयत्न करना चाहिये। तप और स्वाध्याय के बल पर सभी कुछ करने की सामर्थ्य वाला बन सकता है।

अतः मनुष्य को सदा सर्वदा प्रयत्न शील रहना चाहिये जिससे वह इसी जनम में परम्श्रेय भागी बन सके।

उद्योगिन पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मी,
दैवेंहि दैवमिति कापुरुषा वदंति।
दैवं निहत्य पुरुषौंषमात्म शक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोत्र दोषा:।

योग साधन का स्थान

आनंदकंद भगवान कृष्णचन्द ने श्रीमद् भगवद् गीता में: —

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य

कह कर यह बतलाया है कि योग की साधना के लिए स्थान अत्यन्त पवित्र और सुरम्य होना आवश्यक है। महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर ने इस की विस्तार से व्याख्या करते हुए अपना अभिमत इस प्रकार व्यक्त किया है:-

योगाभ्यास करने के लिए सबसे पहले एक उपयुक्त स्थान देखना चाहिए। वह ऐसा हो कि यदि विश्राम करने की इच्छा से भी कोई वहां जाकर बैठे, तो फिर वहां से उठने को उसका जी ही न चाहे। वह स्थान ऐसा हो कि वहां के दृश्य से ही वैराग्य दूना हो जाय। वहां यदि सन्त जनों का निवास हो तो उससे सन्तोष की पुष्टि होती है और मन को धैर्य का सहारा मिलता है। जहां योगाभ्यास अपने आप होता है, जहां की रमणीयता के कारण हृदय को आत्म ज्ञान का अनुभव हो, जहां विषय सुखों के लिए रहने वाले को भी यह अनुभव हो कि मैं संसार का वैभव त्याग कर यहीं शान्ति पूर्वक पड़ा रहूँ — ऐसी स्थान योग की साधना को उत्तम होता है। उस स्थान में एक विशेष गुण यह भी होना चाहिए कि वहां योगाभ्यास करने वाले साधकों की ही बस्ती हो। मार्ग-दर्शन के लिए पहुँचे हुए सद् गुरु वहां रहते हों। जहां महान फलदार वृक्ष हों और जहां सुन्दर जलाशय हो और जहां हर समय मधुर जल सुलभ हो बहुत गरमी न हो तथा जहां सांसारिक शोरगुल न होता हो जो शान्त और एकान्त हो ऐसा स्थान ही योग साधन को श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

श्री गुरु–वन्दना

(प्रोफेसर श्री ऋषिराम गुप्ता दिल्ली)

हे मोहन हे चन्द्र हरे, हे दयाधाम गुरुवर अनन्त !
उद्दीप्त तुम्हारी दिव्य ज्योति से, भारत के सब दिग्-दिगन्त ॥

× × × ×

ब्रह्मा, विष्णु, औ महेश के आशीषों के पुञ्ज महान !
अज्ञान तिमिर से अन्धों को तुम देते ज्ञान चक्षु का दान ॥

× × × ×

करुणा निधि हो योगेश्वर तुम वत्सलता के सिन्धु महान !
भव-भीत त्रस्त निज बच्चों को भर अंक करो करुणा का दान ॥

× × × ×

शीतल चन्द्र-मोहन सम मोहक 'प्रभू राम' के सच्चे लाल !
योग-तपस्या से तुम उन्नत जन-गंगा का करते भाल ॥

× × × ×

सरल भेष कोमल वाणी है रसमय मधुर मंजु व्यवहार !
लक्षण हैं यह पूर्ण सन्त के हम मूरख क्या पावें पार ॥

× × × ×

केवल पंडित प्रवर नहीं तुम 'प्रभु' के हो पूरण अवतार !
प्रभुजी हुए अदृष्ट छोड़कर तुम पर अपना सारा भार ॥

तुम में ओत-प्रोत हैं गुरुवर प्रभू राम की सारी शक्ति !
भिक्षा मांग रहे हम गुरुवर दे दो निज सम सद्गुरु-भक्ति ॥

× × ×

वर्षों चरणों में रहकर भी रूप तुम्हारा सके न जान !
छद्म वेष अब अब छोड़ दयानिधि ज्ञान चक्षु का देदो दान ॥

× × × ×

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से पीड़ित हैं हम अज्ञानी !
तुम हो पारब्रह्म योगीश्वर सद्गुरु करुणाकर ज्ञानी ॥

× × × ×

तुम पावन पारस सम हो प्रभु हम लोहा घर वधिक परा !
अवगुण करके दूर हमारे कंचन सबको करो खरा ॥

× × × ×

हम हैं नाला गन्दे जल का विषम-विषय दुर्गन्ध-भरा !
तुम में मिलकर सुरसरि होंगे पावन करने सकल धरा ॥

× × × ×

करते हो उत्थान किसी का हमें भला क्या इसका ज्ञान !
जानें हम भी यदि हम सबका करुणामय कर दो कल्यान ॥

× × × ×

हे मोहन हे चन्द्र हरे, हे योगेश्वर गुरुवर अनन्त !
उद्दीप्त तुम्हारी दिव्य-ज्योति से भारत के सब दिग्-दिगन्त !!

-: ❀ :-

सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्

(श्री बनवासी)

महाभारत के ऐतिहासिक युद्ध में विजय वरण करने के पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया था। इस राजसूय यज्ञ की भी सभी प्रक्रिया जब सम्पन्न हो गई तब दूर दूर देशों से आये हुए सभी आमन्त्रित राजागण एक एक करके विदा होने लगे।

× × ×

पाण्डवों के परम हितैषी और महाभारत के इस उल्लेखनीय युद्ध में उनके सबसे बड़े सहायक भगवान श्रीकृष्ण ने भी द्वारिका लौट जाने की अनुमति चाही। धर्मराज युधिष्ठिर और अन्य सभी भाइयों ने आग्रह किया कि वे अभी कुछ समय तक इन्द्रप्रस्थ में ही निवास करें। भगवान श्री कृष्ण ने पाण्डवों का आग्रह स्वीकार किया और कुछ समय तक वे उनकी राजधानी में और ठहरे रहे।

× × ×

इसके पश्चात् जब वे जाने लगे तब जिन्हें उनको अनन्त शक्तिमत्ता का पता था, जो उन्हें अलौकिक प्रतिभाओं का भण्डार समझते थे उन सबने उनसे यथोचित वरदान मांगे। भगवान ने 'तथास्तु' कहकर स की मनोकामना पूर्ण की।

× × ×

सबसे मिलभेंटकर जब एानंदक श्रीकृष्ण माँ कुन्ती से विदा मांगने उनके राजमहल में गये, तब कुन्ती भरे हुये हृदय से उन्हें विदाई तो दी किन्तु—विनय की देव जाते रहे हो पर मुझे एक वरदान देते जाओ।

× × ×

कृष्ण ने सजल नेत्रों से कहा—माँ बोलो मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

× × ×

कुन्ती ने कहा - देवाधिदेव मुझे यह वर दीजिए कि मुझ पर सदैव आपदाओं के पहाड़ टूटते रहें। दुःख और विपत्ति का सदैव ही मेरे घर आंगन में निवास रहे।

ऐसा क्यों चाहती हो माँ ? भगवान श्री कृष्णने पूछा। कुन्ती ने कहा — इसलिए कि आपदा और आपत्ति आपको अनन्त कृपाओं का सदा स्मरण तो करती रहूँगी। सम्पत्ति और सुख-सुविधा के दिनों में प्रायः संसार भूल जाता है आपको। पर दुःख और संकट की घड़ियों में क्षण-क्षण में आप याद आते रहते हैं। मैं इसीलिए चाहती हूं कि आप मुझे सदैव के लिए आपदा ग्रस्त बने रहने का वरदान प्रदान करें ?

एक सन्त कवि ने इसीलिए मुक्त मन से गाया है :—

सुख के माथे सिल परैं
नाम हृदय ते जाय।
बलिहारी वा दुःख की
पल-पल नाम रटाय ॥

पारस का त्याग

बहुत दूर बर्दवानसे चलकर एक ब्राह्मण आया था ब्रज में । वह पूछता हुआ सब तन गोस्वामी के पास पहुँचा । उसे पारस पत्थर चाहिये । कई वर्षसे वह तप कर रहा था । भगवान् शङ्करने स्वप्नमें आदेश दिया था कि ब्रजमें सनातन गोस्वामी को पारस का पता है वहाँ जाओ ।

ब्राह्मण की बात सुनकर सनातनजी ने कहा —'मुझे अकस्मात् एक दिन पारस दीख गया । मैंने उसे रेत में ढक दिया कि आते-जाते भूलसे न छू जाय । वहाँ उस स्थान पर खोदकर निकाल लो । मैं स्नान कर चुका हूं । उसे छूने पर मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा ।'

निर्दिष्ट स्थान पर रेत हटाते ही पारस मिल गया । उससे स्पर्श होते ही लोहा सोना बन गया । ब्राह्मण का तप सफल हो गया । उसे सचमुच पारस प्राप्त हुआ-- अमूल्य पारस । जिससे स्वर्ण उत्पन्न होता है, उस पारस का मूल्य कोई कैसे बता सकता है ।

पारस लेकर ब्राह्मण चल पड़ा । कुछ दूर जाकर फिर लौटा और सनातन गोस्वामीके पास आकर खड़ा हो गया । सनातन जी ने पूछा — 'आपको पारस मिल गया ?'

'जी, पारस मिल गया ?' ब्राह्मण ने दोनों हाथ जोड़े लेकिन एक प्रश्न भी मिला उसके साथ । उस प्रश्न का उत्तर आप ही दे सकते हैं । जिस पारस के लिए मैंने वर्षों तक कठोर तप किया, वह पारस आपको प्राप्त था । आपने उसे रेत में ढक दिया था और उसका स्पर्श तक नहीं करना चाहते थे । आपके पास पारस से भी अधिक मूल्यवान कोई वस्तु होनी चाहिये । क्या वस्तु है वह ?'

'तुमको वह चाहिये ?' सनातन गोस्वामी ने दृष्टि उठायी और कहा — 'वह चाहिये तो पारस फेंको यमुनाजी में ।'

ब्राह्मण ने पारस फेंक दिया । उसे वह अमूल्य वस्तु मिली । वह वस्तु जिसकी तुलना में पारस एक कंकड़-जितना भी नहीं था । वह वस्तु श्रीकृष्ण-नाम ।

['कल्याण' से साभार

योग साधन क्यों और कैसे?

श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम, एड. आचार्य

जीव कर्मवश संसार चक्र में घूमता-घूमता जब थक जाता है और दुःखित होकर करुण-क्रन्दन करता है तब सौभाग्य से उसे सद्गुरुदेव प्राप्त हो जाया करते हैं। श्री सद्गुरुदेव परम कृपा कर उसे कर्मकूप से निकाल लेते हैं। वह जघन्य गुणवृत्ति वाला प्राणी सत्य पथ का पथिक बन जाता है। उसके मन में सर्व प्रथम आत्म-भाव भावना का उदय होता है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में अनेक छिपे हुए बीज अंकुरित होकर पृथ्वी को आच्छादित करने लगते हैं उसी प्रकार माया के वशवर्ती मनुष्य में सर्व प्रथम गुरुदेव के उपदेश श्रवण तथा वेदादिशास्त्र श्रवण से रोम हर्ष, अश्रुपात तथा प्रभु का गुणगान सुन कर पुलक हो जाता है। यहीं से समझिये कि उसके शुक्ल कर्म उदित होगये हैं और वेद में जिसे 'ऋतं च सत्यं च' मंत्र द्वारा देवयान मार्ग कहा है उस मार्ग का पथिक होने का प्रयत्न करने की योजना बनाता है। इस यात्रा का प्रमाण - पत्र तो गुरुदेव के चरणों का आश्रय लेने से ही मिलता है। क्योंकिः—

बिन सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई॥

इस यात्रा की गाड़ी अभ्यास वैराग्य यम नियम प्राणायामादि सभी अंगों से मिलकर बनती है। जिसमें विरले मनुष्य ही पुण्य पुंजों के उदय होने पर बैठने की इच्छा करते हैं। अधिकांश प्राणी 'इदमद्य मया लब्धम्' अर्थात् यह आज मैंने पा लिया मैंने अमुक को नीचा दिखा दिया मुझे अमुक से बड़ी घृणा है — इत्यादि मनोरथों के रथ में आरूढ़ रहते हैं। फलतः उनके कर्माशय का नाश नहीं हो पाता बल्कि उल्टा कर्माशय बढ़ता ही रहता है। जब अकाउण्ट बढ़ रहा है तो उसका भुगतान करना ही पड़ेगा तभी छुट्टी मिल सकती है।

योग-मार्ग कर्माशय के बीज को दग्ध कर देता है। जिस प्रकार धान का छिलका उतार कर चावल बना लिया गया फिर, उसे कहीं रखिये। उसके उगने का डर नहीं है। चने को जब तक कच्चा ही रखा गया है उसके उगने की पूरी-पूरी सम्भावना है किन्तु एक बार अग्नि से भून लेने पर उसका कर्माशय क्षीण हो जाता है उसके उगने की बिल्कुल सम्भावना नहीं रहती। गुरुदेव योगाग्नि से कर्मों के बीज को भूनते हैं जिसका परिणाम होता है —

ध्यानमेवां क्लेश वद्वृत्तम्

अर्थात् भगवान पतंजलि कैवल्य पाद में कहते हैं कि ध्यान योग आदि से जिस प्रकार चित्त की वृत्तियां निरुद्ध हो जाती हैं उसी प्रकार धारणा समाधि आदि अन्य अंगों से

अस्मिता, राग, अभिनिवेषादि सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं जिसका फल यह होता है कि

'ततः क्लेश कर्म निवृत्तिः।'

अर्थात् अविद्यादिजो क्लेश जन्म-मरण व्याधि आदि दुःखों के हेतु हैं वे भी योगारूढ़ पुरुष के लिये निवृत्त हो जाते हैं। उपनिषद् के

'क्षीयन्ते-चास्य कर्माणि-तस्मिन्दृष्टे परावरे'

वाक्य का भी यही अभिप्राय है। जब कारण ही नष्ट हो गया तो कार्य कैसे रह सकता है? कपड़े को जला देने पर उसके तन्तु, रंग, तन्तु-समवाय तथा कलाकृति एवं उसके सभी धर्म यथा नवीन, प्राचीन, फटा-पुराना, अच्छा-बुरा सभी नष्ट हो जाते हैं। वह वस्त्र नाम, रूप, गुणधर्म से रहित वस्तु-रूप हो जाता है। उसी प्रकार कर्माशय के क्षीण होने से ही —

'तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'

अर्थात् द्रष्टा तभी अपने चेतन स्वरूप में एक रूप होता है — यह स्थिति प्राप्त होती है। यह मंजिल चन्द्रलोक से भी बड़ी लम्बी है। एक दिन या एक जीवन में ही मिल जाय यह शर्त प्रतिशत सत्य नहीं है। सद्गुरुदेव की कृपा हो जीव का अपना पुण्योदय हो तथा उसमें यह अनुभूति हो 'मैं कर्मों के बन्धन में हूँ।' 'दुःख से जल रहा हूँ।' 'इससे मुक्त होकर ही रहूँगा। तभी नरतनु का प्रयोजन पूर्ण हो सकता है।' अधिकांश प्राणी तो ऐसे ही हैं जो नरतनु पाइ विषय मन देंहि। जगद्गुरु शंकराचार्य ने सांसारी पुरुषों का यथार्थ चित्रण किया है—

बालस्तावद् क्रीडासक्तः,
तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावद् चिन्ता मग्नः,
पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः॥

अधिकांश लोग सोचते रहते हैं अभी तो यौवन है भोग करलें। बुढ़ापा आने पर कुछ आत्म-चिन्तन करेंगे पर बुढ़ापा कब रुकने वाला होता है। बुढ़ापा अपने साथ रोग, दुर्बलता इन्द्रियों की क्षीण शक्ति तथा चिन्ताओं का तोहफा लेकर आता जाता है उस समय कुछ करने की बात सोचना 'प्रदीप्ते भवने कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः' अर्थात् आग लगने पर कुआ खोदने में उद्यम करने के समान है। एक महात्मा से एक युवक ने कहा— महाराज आप ये उपदेश बुड्ढे लोगों को दें तो ज्यादा अच्छा रहे। हम लोगों के खेलने खाने के दिन हैं।' महात्मा का उत्तर ध्यान देने योग्य है :-

'जिस प्रकार स्त्री को हृष्ट-पुष्ट पुरुष की अपेक्षा है इसी प्रकार योग-साधना, भक्ति आदि सभी के लिए ऐसे ही पुरुष की आवश्यकता है। जिसका शरीर निराशा और चिन्ता से जर्जरित नहीं है, जिसमें कुछ करने का अदम्य उत्साह है। जो जीवन में अमृतपान करना चाहता है, जिसे अभी बहुत रास्ता तय करना है।" अस्तु, वैसे शुभ कार्य जब से भी प्रारम्भ हो जाय अच्छा ही है। कुछ भी संस्कार बन गये तो कर्मों के खाते से उतना बे-बाक हो जायगा तथा अगले जन्म में वहीं से आगे बढ़ने की

दिशा मिल जायगी। कबीरदास जी कहते हैं
मारग चलते जे गिरे तिनको नाही दोष।
कह कबीर जो ना चलें तिनको करड़े कोस॥
'कर्म एव मनुष्याणं कारणं बन्ध मोक्षयोः
अर्थात् कर्म ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। 'अहं' की भावना से जो भी कर्म किये जाते हैं वे सब अविद्या की सन्तान परम्परा को जन्म देते हैं तथा बन्धन के हेतु होते हैं। प्रायः मलिन सत्व प्रधान जीव स्वार्थ के वशीभूत होकर ही कर्म करते हैं। बन्धन हेतुक कर्म पहले देखने में सुख मूलक लगते हैं किन्तु परिणाम में दुःखद होते हैं। बन्धन के हेतु कर्मों का त्याग करना चाहिये तथा मोक्ष हेतुक कर्मों का अभ्यास करना चाहिये। 'अभ्यास वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः' में मन के संस्कारों के निरोध के लिए अभ्यास और वैराग्य को इसी उद्देश्य से आवश्यक बतलाया गया है। कर्म से संस्कार बनते हैं और संस्कारों से भाव तथा भाव से ही जगत की रचना होती है। चाहे यह साधु भाव हो या असाधुभाव। भिन्न-भिन्न गुण वृत्ति के अनुसार भाव-कर्म-तथा संस्कारों का निर्माण होता रहता है। कर्मों का रहस्य जानना स्वयं में ईश्वर बुद्धि का उदय है। यदि प्राणी के मन में यह भाव आने लगा —

'कोऽहमासम् कथमहमासम्
किस्विद् इदं, कथं स्विदिदं।

अर्थात् मैं कौन था? यह संसार क्या है। यह संसार कैसे बना इत्यादि जिज्ञासा मूलक प्रश्नों के उठने पर ही समझ लेना चाहिये कि मोहनिशा से जीव जग गया है। परन्तु जब तक सद्गुरुदेव की प्राप्ति नहीं हुई तब तक समझना चाहिए कि सूर्योदय नहीं हुआ। यात्रा करने की भावना हुई पर कहाँ जाना है? कैसे जाना है, यह सब बताने वाला चाहिये। मन की यह छटपटाहट यह बेचैनी कितने लोगों में होती है। नचिकेता में थी। उसने यमाचार्य द्वारा दिये गये सभी प्रलोभनों को ठुकरा दिया। विवेकानन्द में थी, जिन्होंने माँ महाकाली से लौकिक अभ्युदय की याचना करते हुए बड़ी लज्जा का अनुभव किया था। जो हीरे दे सकता है उससे मिट्टी माँग कर अपनी मूर्खता प्रकट करते हो।" शब्द उनके कानों में गूँज गये। पृथ्वी घूम गई। विवेकानन्द भावातुर हो चिल्लाने लगे मोक्ष देहि कृपां देहि। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में कहा भी है कि यह छटपटाहट हर प्राणी में नहीं होती। अधिकांश प्राणी पद, सत्ता, धन-कुटुम्ब आदि की आपाधापी में ही हीरे के समान कीमती जीवन को मिट्टी के मोल बेच देते हैं—

'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।

अर्थात् हजारों मनुष्यों में से बिरला ही संसार अग्नि से जलता हुआ अनुभव करता है तथा उससे मुक्त होने का यत्न करता है। यत्न करने वाले हजारों पुरुषों में से कोई—कोई परम प्रभु का साक्षात्कार कर पाता है। मार्ग में अनेक खाई खंदक और अन्धकार है।

उसे पाकर आगे बढ़ना हर एक के वश का काम नहीं। जिसमें 'सर फरोशी की तमन्ना है, तथा संत कबीर के शब्दों में 'जो घर फूंके अपना चले हमारे साथ' कर सकता है वही योग मार्ग में प्रवृत्त हो सकता है। यहाँ मोक्ष हेतुक कर्मों का निर्देश करना अप्रासंगिक नहीं होगा, प्राय: साधकों के समक्ष आचार और और व्यवहार सभी अनेक प्रश्न आते है जिन की उलझन में पड़कर वे साधना करना छोड़ देते हैं वस्तुतः कर्म का विषय बड़ा गहन है—

कि कर्म किम् कर्मेति
कवयोऽप्यत्र मोहिताः।

गीता में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को समझाया है कि हे अर्जुन कर्म मनुष्य को संसार चक्र में डालते हैं इसलिए कर्म करो पर निष्काम होकर। कैसे क्या करना चाहिये? क्या नहीं करना चाहिये? इन प्रश्नों का उत्तर बड़े बड़े मनीषी भी नहीं दे सकते। अतः भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को दो चार गुरुमंत्र बताये :—

१- पूर्वकाल में मुमुक्षुओं ने जिस प्रकार के कर्म किये थे वैसे ही तुम कर्म करो

२ निर्लिप्त होकर कर्म कर। उनमें अपने मन को भी आसक्ति का त्याग कर अर्थात् कर्म फल की चाह न कर तभी नवीन कर्माशय नहीं बनेगा। वर्तमान निष्काम कर्मों से संचित एवं प्रारब्ध कर्म क्षीयमाण हो जायेंगे। परम हंस रामकृष्ण कह दिया करते थे - जैसे कीचड़ में पाताल मछली रहती है परन्तु उसके शरीर पर कीचड़ नहीं लगती उसी प्रकार कर्म करो परन्तु उनमें लिप्त न हो।

३. कर्म में अकर्म देखो तथा अकर्म में कर्म देखो।

" कर्मण्यकर्म यः पश्येद-
कर्मणि च कर्म यः।
सः बुद्धिमान्मनुष्येषु,
सयुक्तः कृत्स्न कर्म कृत्॥

अर्थात् कर्त्ता होकर फल भी की इच्छा से रहित बनो और अकर्त्ता भाव रखो तथा अकर्त्ता भाव रखने का यह अर्थ नहीं सोचने लगो।

अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम॥

कर्म किये बिना रह नहीं सकते। शरीर एवं इन्द्रियों से कदाचित कर्म करना बन्द भी करते तो मनुआँ तो चहुँ दिश फिरता ही रहेगा और चित्त में परिणाम संस्कारों का निर्माण करना हो रहेगा। फिर कैसे मुक्त हो सकते हो। वेद की भी आज्ञा है —

"कुर्वन्नेवेह कर्माणिजिजी
विषेत् शतं समाः

अर्थात् कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। इससे अच्छा कोई मार्ग नहीं है।

इस प्रकार करने से मनुष्य कर्म में लिप्त नहीं होता और न निष्क्रिय ही बनता है। कर्त्ता में अकर्त्ता भाव तथा अकर्त्ता में कर्त्ता भाव यही भाव है।

(४) शरीर को धारण करने के लिए भरण-

पोषण-उपाय तो अवश्य करने पड़ेंगे ही। न करने पर पराश्रयी रहना शोषण होगा। पर शरीर को धारण करने के लिए कितना अन्न चाहिये। तुमने हजारों मन इकट्ठा कर रखा है उसको कैसे ऊँचे दामों में बेचें यही चिन्ता रातदिन। कर्माशय बढ़ रहा है। रहने के लिए कितनी जगह चाहिये? सौ वर्ग गज एक हजार वर्ग गज फिर सर्वत्र तुम्हारी ही कोठियाँ हों यह इच्छा क्यों? छूटेंगे कैसे? कर्माशय बढ़ रहा है। शरीर को शीतोष्ण से बचाने के लिए वस्त्र चाहिये। कितने जोड़ों में सन्तुष्ट हो जाओगे? नयी फैशन नयी डिजाइन इसके लिये पैसा कहाँ से लाओगे? चोरी रिश्वत बेईमानी से कर्माशय बढ़ रहा है।

भगवान श्रीकृष्ण ने इसलिये बताया-

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्त सर्व परिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥

अर्थात् मन को निग्रह करके परिग्रह त्याग कर आशा का निराकरण कर दो। शरीर को ही आत्मा समझ कर यदि उसके लिए ही कर्म करते रहोगे तो पाप होगा।

योग के द्वारा ही कर्मों से छुटकारा मिल सकता है। योग युक्त पुरुष के कर्म ही मोक्ष हेतुक कर्म होते हैं। लोहा ही लोहे को काटता है, इसी प्रकार कर्मों से ही कर्मों का नाश होता है। आत्म भाव में स्थित हुए योगी को कर्म बाँध नहीं पाते। वह कर्म करता हुआ भी अकर्ता होता है क्योंकि उसके अस्मिता वृत्ति (मैं करता हूँ) ध्यान योग के द्वारा दग्ध हो जाती है और उसके अन्दर यह भाव सहज ही आ जाता है —

मेरा मुझ में कुछ नही सब कुछ है प्रभु तोर।
तेरा तुझ को सौंपते क्या लागेगा मोर॥

गीता में भगवान कृष्णचन्द्र कहते है —

योग संन्यस्त कर्माणंज्ञान संछिन्न संशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय॥
तस्मादज्ञान सम्भूतं हृत्स्थं ज्ञान सिनात्मनः।
छित्वैनं संशयः योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥

अर्थात् हे अर्जुन जो योगाभ्यास द्वारा कर्मों का त्याग कर देते हैं तथा ज्ञान द्वारा संशयों का छेदन कर देते हैं। ऐसे आत्म भाव में स्थित योगियों को कर्म जन्ममरण के बन्धन में नहीं बाँधते। अतः अविद्या जन्य हृदय में उठे हुए संशय को ज्ञान की तलवार द्वारा काट कर योग में आरूढ़ होने के लिए उठ खड़ा हो।

कर्माशय के नाशोपाय

यम-नियम प्राणायाम प्रत्याहार - धारणा ध्यान - समाधि के द्वारा क्लेश कर्मों का नाश होता है तथा विशुद्ध सत्त्व प्रधान ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है जिसने अविद्या माया तथा जनित समस्त प्रकार के संशय विपर्यं मिथ्यादि ज्ञान से रहित केवल मात्र सत्य का ही प्रकाश होता है। इस स्थिति तक पहुँचने के लिए प्रारम्भिक कक्षा को लमकर पढ़ाई करने की आवश्यकता है। सिद्ध योगी तो बिना सिढ़ियों के ही परम पद पर ऊपर चढ़ सकते हैं तथा दूसरे को भी वह मार्ग दिखा सकते हैं। यह इसी प्रकार है जैसे पार्लियामेण्ट देखने के लिए किसी मिनिस्टर के साथ आप बे रोक-

टोक जा सकते हैं पर वहाँ स्थायी बैठने के लिए आपको मिनिस्टर होने की सभी प्रक्रियाओं से होकर गुजरना होगा । अतः साधक को यम-नियमों का अभ्यास करना चाहिए तभी उसका लौकिक आचरण अन्य पुरुषों से भिन्न होगा तथा अनुसरण होने के अनुरूप होगा ।

अहिंसा-सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पाँच जाति देश काल समय से अनवच्छिन्न सार्वभौम महाव्रत हैं । इनका पालन अखिल भूलोक के प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक है ।

शौच-सन्तोष तपः स्वाध्येश्वरप्रणिधानानि-नियमाः ।

अर्थ स्पष्ट है । पाँच नियम हैं जो मानसिक प्रसन्नता के लिये आवश्यक हैं । जब तक मन में सत्व गुण का उद्रेक नहीं होता तबतक मन में धारणा करने की योग्यता नहीं आसकती । गीता में भगवान ने कहा है । 'प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिपर्यवतिष्ठति' चित्त की प्रसन्नता तभी हो सकती है जब चित्त के मल को धो दिया जाय । शौच सन्तोष आदि के द्वारा मन की मैली चादर को धोकर स्वच्छ किया जाता है जिससे इसे श्याम रंग में रंग सकें । साधना अवस्था में प्रायः विश्वास डगमगाने लगता है तथा श्रद्धा भी साथ छोड़कर जाने लगती है । 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' अर्थात् कल्याण मार्ग में बहुत से विघ्न उपस्थित होते हैं । परिवार में लोग अनर्गल बातें प्रचारित करना प्रारम्भ कर देते हैं । स्वयं अपने प्रारब्ध के संस्कार ही शुद्ध कपड़े को गन्दा करना चाहते हैं । विषय भोगों की लालसा प्रबल होने लगती है । उठी हुई शक्ति का प्रदर्शन अथवा दूसरे का अनिष्ट करने की इच्छा होती है । कंचन और कामिनी में आसक्ति होने लगती है । ऐसी अवस्था में साधक को क्या करना चाहिये । भगवान पतञ्जलि ने योग-दर्शन में स्पष्ट कहा है:-

वितर्क बाधने प्रतिपक्षभावनम् ।

अर्थात् अहिंसा आदि का अभ्यास करने के बाद भी कभी-कभी क्रोध, लोभ या मोहवश हिंसा अब्रह्मचर्य आदि में प्रवृति हो जाती है और जो कुछ परिश्रम किया था कर्माशय तथा कर्म बीज को क्षीण करने के लिए वह फिर अंकुरित होने लगता है ऐसी दशा में विलोम भावना करने से मंजिल से नीचे पतन नहीं हो पाता । जिन विषयों को छोड़ दिया । मन से शत्रुता की भावना निकाल दी । नारी में मातृभाव का अभ्यास कर लिया । यदि अज्ञान के समूल नष्ट न होने के कारण चित्त में विक्षेप हो । तथा स्वयं किसी को मारकर दूसरे को मारने की प्रेरणा आदि इच्छा हो ऐसे समय में उसे विचार करना चाहिये ।

घोरेषु संसाराङ्गरेषु पच्यमानेन मया शरणमुपागतः सर्व भूताभय प्रदानेन योगधर्मः स खल्वहं त्यक्त्वा वितर्कान पुनस्तानाददान स्तुल्य श्ववृत्तेन इति भावयेत यथा श्वाः वान्ता वलेही तथा त्यक्तस्य पुनराददान इति ।

अर्थात् घोर संसार के दुःख में व्याकुल मैंने समस्त प्राणियों को अभय देने वाले योगधर्म की शरण ली है, उसके अभयदान धर्म को छोड़कर फिर मैं वासनामय वध-भोग आदि पापकर्म में प्रवृत्त होना चाहता हूँ। जो जो वितर्क (अविश्वास) मन में उपस्थित हो उस के प्रतिकूल ही दूसरा भावना का ध्यान करना चाहिये और विचार करना चाहिए कि जैसे कुत्ता वमन करने के बाद ही फिर उसी का भक्षण करता है उसी तरह मेरा आचरण कुत्ते की भाँति हो जायगा। मनुष्य होकर कुत्ते का जैसा आचरण करना क्या मुझे उचित है। इस प्रकार के अभ्यास से साधक योगारूढ़ होकर मार्ग की बाधाओं का पार करता हुआ परम पद का पथिक बन जाता है।

भजोरे ! प्रभु रामलाल सुखदाई

श्रीमती कृष्णा वर्मा, शामली

टेक

भजो रे ! प्रभुरामलाल सुखदाई ॥
दीन अधम तारन को जिसने सिद्ध गुफा दरसाई।
तीन काल के हैं जो ज्ञाता हर घट बीच समाई ॥
अगम अगोचर लीला जिनकी देती नहीं दिखाई।
नाम लिये हरि पाप को मेटे प्रीति बड़ी फलदाई ॥
कितने पापी मुक्त हुए हैं प्रभु चरणन में आई।
मैंढ़ू मल्लाह रामरती सम भव सागर तर जाई।
दीनानाथ दया के सागर कृपा सिन्धु बलदाई।
भक्तन काज लाज हित दौड़े करते सदा सहाई॥
शुद्ध भाव से शरण लो इनकी क्यों रहे समय गँवाई।
योग के सूरज 'चन्द्रमोहन जी, दूर करे कठिनाई ॥

योग और योगी

श्री ओमप्रकाश पालीवा

योगियोंने और ज्ञानियों ने योग के अनेक लक्षण किये हैं। भक्ति-योग, ज्ञान-योग, कर्म-योग, राज-योग, हठ-योग आदि । पर योगीजन 'याग' से जो अर्थ ग्रहण करते हैं वह 'युज' धातु से 'जोड़ना' 'मिलना' है। युज् समाधी से योग का अर्थ है समाधि। योगाचार्य भग-वान श्री पन्तजलिजी ने "**योगश्चित्त वृत्ति निरोध:**" कह करके योग शब्द की अभिव्यक्ति की। निरोध शब्द का अर्थ शास्त्रीय परिभाषा में निरोध: समाधि सेच इसी प्रकार योग समाधि आदि वचनों से समाधि ही सिद्ध होता है। समाधि शब्द का अर्थ उपनिषदों में समाधि समतावस्था का नाम ही है।

मानव का सच्चा धर्म योग ही है। धर्म वह है जो मनुष्य को ईश्वर की ओर जाने के मार्ग पर धारण करता है। यही धर्म है, यही योग है जीवात्मा का विश्वात्मा के साथ। जीवात्मा और विश्वात्मा मूलतः एक ही स्वभाव वाले हैं, इसी से उनका योग होता है, परस्परविरुद्ध स्वभाव-वालों का, जैसे तेल और पानी का, योग नहीं होता।

भगवान् पतञ्जलि के अनुसार योग साधन का क्रम इस प्रकार है—

यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ,

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा , ध्यान व समाधि रूप अष्टाङ्ग योग है। इसमें प्रथम पाँच अंङ्ग बहिरंग माने गये हैं तथा धारणा, ध्यान समाधि अंतरंग। भगवान पतञ्जलि के शब्दों में "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा: अर्थात् किसी एक में चित्त को बाँधना धारणा कह-लाती है। धारणा से ही सम्प्रज्ञात योग का प्रारम्भ होता है। धारणा सिद्ध हो जाने पर मन के अन्दर योग प्रवेश की योग्यता हो जाती है। धारणा की सिद्धवाला मन जिसकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो चुकी है सम्प्रज्ञात योग का अधिकारी बनता है। सम्प्रज्ञात योग का अभ्या-सी योगी अपने प्रथम अभ्यास में वितर्कानुगत योग का अभ्यास करता है, जिससे वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पाँच महा-भूतों का व शब्द - स्पर्श, रूप रस गन्ध इनके गुणों का प्रत्यक्ष करता है। इस वित-र्कानुगत योग में पंच भूत व पंच भूतों से होने वाले वाले सब विस्तार का और इनके सब विषयों को पूर्ण प्रत्यक्ष करता है। साधक अपने अभ्यास में पृथ्वी तत्व में पहाड़, सुरम्य वन, उपवन व नाना प्रकार की दिव्य सुगन्धों

को अनुभव करता है और जल तत्व में महान नाना प्रकार के समुद्र और दिव्य रसों का अनुभव करता है। अग्नि तत्व में अनेक विधि ज्वालाओ और महान दिव्य रूपों का अनुभव करता है। वायु तत्व में दिव्य स्पर्शोंका अनुभव करता है, व आकाश तत्व में शून्य आकाश व आकाश से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के शब्दों को सुनता है।

इस वितर्कानुगत योग में सवितर्क व निर्वितर्क दो अलग-अलग भेद है, उसमें सवितर्क समाधिः- तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः। अर्थात् वितर्कानुगत में जिस समाधि में शब्द अर्थ और उसका ज्ञान मिला हुआ सा होने पर बराबर अलग अलग भाषित होते रहें वह सवितर्क समाधि कहलाती है व इसका अभ्यास करते हुए चित्तध्येयाकार हो जाय व शब्द अर्थ का ज्ञान न रहे तब वह निर्वितर्क समाधि कहलाती है।

निर्वितर्क समाधि क ‍ पराकाष्ठा म पहुँच जाने के बाद मनुष्य का मन सूक्ष्म विषयो में प्रवेश करता है अभी तक वितर्कानुगत योग में स्थूल महा-भूतों का और उनके विषयों का प्रत्यक्ष किया था, किन्तु अब विचारानुगत योग में महाभूतों को अपेक्षा उनसे सूक्ष्म तन मात्रा का प्रत्यक्ष करता है इसके साथ-साथ दस इन्द्रियां का मन, बुद्धि अहंकार का प्रत्यक्ष करेगा। जिस प्रकार वितर्कानुगत समाधि के सवितर्क और निर्वितर्क दो भेद है। इसी प्रकार विचारानुगत समाधि के सविचार और निर्विचार दो भेद है। इस विचारानुगत योग में योगी प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है। इस स्थिति के योगी को दूर दर्शन, दूर श्रवण, दूर स्पर्श आदि स्वतः ही होने लगता है। इसके साथ-साथ सूक्ष्म देव लोकादि भी अनुभव में आने लगते हैं। यह चारों प्रकार की समाधियाँ सबीज कहलाती हैं यहां तक संसार का बीज बना रहता है। योगी संसार से परे नहीं हो पाता, इसलिए स्थूलार्थ में सवितर्क और निर्वितर्क और सूक्ष्मार्थ में सविचार और निर्विचार समाधियां सबीज है किन्तु निर्विचार समाधि ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसकी स्थिति निर्मल बनती जाती है। आगे चलकर योगी को ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा-ऋतम्भरा प्रज्ञाप्राप्त होती है उस समय योगी जो कुछ देखता सत्य देखता है इस बुद्धि का विषय श्रुत और अनुमान से बहुत आगे का होता है ऐसी स्थिति में योगी ज्यो ही संयम करता है त्योंही अपने आपको आनन्दमय देखने लगता है यही सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी स्थिति आनन्दनुगत की है। इसी प्रकार योगी की दृग शक्ति और बुद्धि की दर्शन शक्ति जब एक रूप में भाषित होती है और उसमें योगी संयम करता है तब वह अस्मितानुगत योग को प्राप्त होता है। इस अस्मितानुगत योग में पुरुष की दृग शक्ति और बुद्धि की दर्शन शक्ति क्योंकि एकाकार भाषित होती है इसलिए जड़ चेतन की गांठ कहा गया है। विवेक ख्याति के द्वारा ही स्फुट प्रज्ञा लोक हो जाने के बाद विवेक ख्याति से ही जड़ चेतन की गांठ खुल जाती है और

ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अन्य संस्कारों का प्रतिरोध होने के बाद निर्बीज समाधि को योगी प्राप्त करता है यही परम पुरुषार्थ है ।

योगी ईश्वर सदृश हो जाता है । योगी का संसार में रहना ही संसार के लिए परम मङ्गलकारक है । जिस किसी को उसका स्पर्श होता है वही पवित्र हो जाता है वह चाहे जिसको मुक्त कर सकता है । सृष्टि-स्थिति संहार की शक्ति उसमें आजाती है ।

जब योगी ब्रह्म में लीन हो जाता है तब वह सर्वज्ञ हो जाता है। चौबीसों घन्टे अपने सूक्ष्म शरीर के अन्दर ब्राह्मी स्थिति में मस्त रहते हुए वह जो कुछ देखना चाहता है, मनुष्यवक्ष में देख लेता है। अगम्य लोकों में जाकर वहाँ की हर एक वस्तु का देख सकता है, विश्लेषण कर सकता है।

योग को प्राप्त योगी में अद्भुतशक्तियाँ जाग्रत होती हैं जैसाकि योग शिखोपनिषद् में मिलता है।

इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रस्त्व जरामरः।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु लीलया यत्रकुत्र चित् ॥
अचिन्त्य शक्तिमान्योगी नाना रूपाणि धारयेत् ।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रिय ॥
नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योगबलेन तु ।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः ॥
मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति ॥
यत्र जीवन्ति मूढास्तु तत्रासौ मृत एव वै ।
कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति कृते नासौ न लिप्यते ।
जीवन्मुक्त सदा स्वच्छ सर्व दोष विवर्जित ॥

अर्थात् योगीन्द्र लोग इच्छा रूप होते हैं । अपनी इच्छा से ही वे लोग तीनों लोकों में स्वतन्त्र गति से विचरते रहा करते हैं । उनकी शक्ति इतनी अदभुत होती है कि उसको हर व्यक्ति सोच भी नहीं सकता । वे लोग एक क्षण में हजारों रूप बनालें और फिर उनका संहार भी करदें । ये लोग हठ साधना के द्वारा अपने आपको मार लेते हैं । कठिन योग साधनायें करते हैं इसके परिणाम स्वरूप वे लोग फिर मरण धर्मा नहीं रहते । जो व्यक्ति अपने आप को हठ साधना के द्वारा मार लेता है उसका फिर मरण नहीं होता । योगी लोग विजितेन्द्रिय होते हैं । जिन वासना के गर्तों में सांसारिक लोग हर समय मरते रहते हैं वहाँ पर योगेश्वर लोग सर्वथा जीवित ही रहते हैं और जिन वासना क्षेत्रों के अन्दर दुनिया के लोग हर्षोल्लास के साथ भोगासक्ति में अपने को जिन्दा रखते हैं वहाँ पर वे यतीन्द्र लोग सर्वदा मरे ही रहते हैं ऐसे योगेश्वरों का कुछ भी कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता । उन लोगों की स्थिति कर्म बन्धन से परे हो जाती है । वे लोग सदैव जीवन मुक्त स्वच्छ एवं दोष रहित होते हैं।

उपर्युक्त योगियों के लक्षणों का साक्षात्कार मैंने अपने पूज्यपाद सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी में किया है । अनेकों बार मेरे गुरुदेव ने संकटकाल में अपरचित व परिचित रूप में आकर अपने प्रियशिष्यों की सहायता की ऐसे स्थानो में जहाँ उनकी मदद करने वाला कोई न था । जब गुरुदेव

के समक्ष उन लोगों ने अपना अपना हाल कहा तो गुरुदेव यह कहकर उस पर आवरण डाल दिया करते है लल्ला कोई और होगा। गुरुदेव जी के द्वारा अपनी इच्छा शक्ति के आधार पर नाना प्रकार के शिष्यों के कार्य सम्पन्न होते अनुभव किये गये हैं तथा अपने गुरुभाइयों से भी सुना है।

योगियों में जो अपार कार्यक्षमता होती है उसकी तो गुरुदेव साक्षात् मूर्ति हैं। मेरे गुरुदेव 'कर्तुं मकर्तुं मन्यथा कर्तुं म' की ताकत वाले हैं अर्थात् बिगड़ी को बनादें बनी को बिगाड़ दें और बिगड़ी को फिर बनादें। इस प्रकार की सर्व सामर्थ्यता मेरे गुरुदेव जी में है। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियों मैं लिखने लगा हूँ सर्व समर्थ योग योगेश्वर व सब तरहसे परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पारहे हैं। सम्भव है इस विषय में उनका अपना ही सङ्कल्प हो,किन्तु उनके चरणारविन्दों में चिन्तन करने वाले प्रेमी शिष्य समुदाय के अन्दर लोगों में जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे से लेख में लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

वस्तुतः इस परम पवित्र योग विद्या को अपनाकर योगी सर्व शक्ति व सामर्थ्य वाला हो जाता है अधीन ऐसा योगी शास्त्रों के अनुसार ईश्वर ही है।

—०—

योग - मार्ग

योगी के लिए मन की शुद्धता और दृढ़ता आवश्यक है। मन की शुद्धता और एकाग्रता योग के सुविशाल प्रसाद की वह पहली सीढ़ी है जिस पर चढ़े बिना योग के इस विशाल प्रसाद में कोई प्रवेश ही नहीं कर सकता।

× × ×

योगी जल्दबाजी करके सिद्धि नहीं पा सकता उसे सोच समझ कर बोलना चाहिए। धीर भाव से एक-एक पग धरना चाहिए। फूँक-फूँक कर चलना चाहिये। गर्व करना उसके लिए बहुत बुरी बात है उसका व्यवहार सहज होना चाहिए। धैर्य उसकी सबसे बड़ी साधना है। योगी का आचरण ही वस्तुतः प्रधान वस्तु है।

— गोरख वाणी

शान्ति प्राप्त करने के नियम

प्रो० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

ईश्वरीय सृष्टि का कुछ ऐसा नियम है कि जितनी सांसारिकता बढ़ती है, उतनी ही मन की शान्ति नष्ट होती है। मनुष्य जितना दुनिया की भाग दौड़, संघर्ष, रुपये के लोभ, लालच, वासना, झूठे ज्ञान, मिथ्या आडम्बर, विलासिता और व्यसन में फँसता है, उसी अनुपात में वह अशान्त रहता है।

× × ×

जगत् में सर्वत्र महँगाई-महँगाई की पुकार है। वास्तव में महँगाई विलासिता के कारण है। जिन्हें कृत्रिम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नाना प्रकार की सामग्रियाँ चाहिये वे ही दुखी और अशान्त हैं। यदि व्यर्थ की चीजों का परित्यागकर हम आत्मनियन्त्रण कर, अपनी शौकीनीको वश में रक्खें और सांसारिकता छोड़ दें तो मानस-शन्ति प्राप्त हो सकती है।

× × ×

जीवन्मुक्त वह पुरुष है, जिसमें साधारण मनोविकारों से उत्पन्न उत्तेजना नहीं है। उत्तेजक स्वभाव सबको शत्रुरूप में देखता है और प्रतिशोध, ईर्ष्या आदि में उद्विग्न रहता है।

× × ×

सांसारिकता (अर्थात् अविद्या को) छोड़कर ज्यों-ज्यों मनुष्य आध्यात्मिक जीवन के समीप आता है, उसे जगत् के मिथ्या तत्त्व का भान होता है। कञ्चन कामिनी तथा अन्य वस्तुओं का क्षणिक आनन्द दूर होकर वह ब्रह्मानन्द को ही अपने सुखका केन्द्र मानता है।

× × ×

ज्यों-ज्यों मनुष्य बाहर जगत् में फैली हुई वृत्तियों को अन्तर्मुखी करता है, उसे संसार की तुच्छता का ज्ञान होता है। धीरे धीरे उसे दैवी विचार तथा ब्रह्मचिन्तन में रस प्राप्त होने लगता है। उसके हृदय में विचारों का राज्य हो जाता है। 'सब देवों का देव मेरे हृदय में विराजमान है' यह भाव जमते ही वह जगत् की तुच्छता को समझ जाता है।

—०—

मेरे गुरुदेव

(प्रोफेसर वीरेन्द्र सिंह वर्मा, एम०एस-सी०एजी०)
अध्यक्ष कृषि विभाग, रा० कि० डिग्री कालेज, शामली

चरणाविन्दं गुरुदेव नमामि, प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो, का मंगल नाद आश्रम में गूंज रहा था। भक्त मंडल आश्रम विभोर हो रहा था कोई शंकर भगवान के ताण्डव नृत्य की मुद्रा में था तो कोई अखिल लोक पावन जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण की मुद्रा बनाकर बंशी धारण किये था और दूसरे अनेक साधक दिव्य मस्ती को पाकर भाव विभोर हो झूम झूम कर नाच रहे थे। ये साधकगण अपने शरीरों का ज्ञान भूल कर ध्यानस्थ अवस्था में पहुँच रहे थे। बच्चे-युवा वृद्ध स्त्री पुरुष इस प्रकार गिर रहे थे जैसे वृक्ष से पके फल गिर जाते हैं। इनके मुख मण्डलों पर दिव्य तेज एवं गाम्भीर्य की झलक स्पष्ट थी। ऐसा दिव्य दृश्य इससे पूर्व मैंने कभी नहीं देखा था। यह राम नवमी का पुनीत पर्व था और मैं करुणानिधान योगेश्वर श्री गुरुदेव जी से योग में दीक्षा प्राप्त करने परम पावन सिद्ध धाम सँवाई आश्रम गया हुआ था। अभी मैंने दीक्षा नहीं लीथी और जो कुछ भव्य एवं दिव्य दृश्य पूर्व की रात्रि को देखा था इसका गूढ़ रहस्य न समझ सका। जानने की मन में उत्सुकता प्रबल बनी। ज्ञात हुआ कि गुरुदेव जी गुफा के अन्दर दीक्षा देने के लिये विराजमान हो गये हैं। दीक्षा देने की तैयारी की। भारी संख्या में दीक्षार्थी पंक्तिबद्ध होकर सिद्ध गुफा द्वार के बाहर खड़े हो गये। अपने नम्बर पर मैं भी पावन गुफा के अन्दर पहुँचा जहाँ योग युक्त हुये सिद्ध शिरोमणी श्री गुरुदेव जी महाराज विराजमान थे। गुरुदेव के सन्मुख बैठ गया। मुझे गुरुदेव का शरीर चिन्मय, उनकी वाणी में विशेष आकर्षण तथा उनके नेत्रों में दिव्य तेज दीप्ति का स्पष्ट आभास हुआ। मेरा शरीर रोमांचित हो उठा। क्षण भर में ही शरीर की सुध-बुध भी न रही। जब होश आया तो अपने को श्री गुरुदेव के चरण कमलों में लिपटा पाया। गुरुदेव ने अतीव प्यार से मुझे उठाकर अपने वक्ष से लगा लिया। मुझे स्पष्ट स्पर्श अनुभव हुआ कि गुरुदेव के चिन्मय शरीर से चन्द्रमा की मधुर शीतलता का स्फुरण हो रहा है। मन में अतीव आह्लाद उत्पन्न हुआ जिसका एकमात्र कारण था परम पवित्र सिद्ध धाम पर पूर्ण सिद्ध योग युक्त गुरुदेव जी की उपस्थिति जिसके कारण वातावरण के अणु परमाणु अलौकिक दिव्यता धारण किये हुये थे। गुरुदेव जी ने विधिवत् दीक्षा दी। मुझे शक्ति पात का पुस्तक ज्ञान

तो पहले था परन्तु अनुभव की प्रत्यक्ष प्रतीति श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में शरण मिलने पर ही हुई।

मैं अपनी बाल्यावस्था से ही अनेक साधु महात्माओं के सम्पर्क में आता रहा हूँ। इन में से कई एक तो बड़े चमत्कारिक भी माने जाते थे। उन पर मेरी श्रद्धा भी रही है। आनन्द कन्द श्री गुरुदेव जी की शरण में आने पर सोचा करता हूँ कि चमत्कारिक होते हुये भी ये महात्मन 'योग' शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं करते थे। श्रीगुरुदेव जी के परम अनुग्रह से अब मैं सोच सकता हूँ कि ये महात्मन कुछ छोटी सिद्धियों के ही अधिकारी थे जिनके आधार पर वे लोगों को यदा--कदा चमत्कार दिखाया करते थे। इन्हीं महात्माओं में से एक महात्मा 'अवधूत' नाम से जाने जाते हैं। कहते हैं महात्मा बड़ी विचित्र प्रकृति के होते हैं सो ये भी इसका अपवाद नहीं हैं। कभी शीश पर जटायें बढ़ा लेते है, कभी मुड़ा लेते कभी हुक्के का शौक आरम्भ कर देते हैं तो कभी भंग का। इनका शरीर तपस्या का प्रतीक है। चमत्कारिक होने के कारण बड़े-बड़े श्रीमान अवधूत जी का सम्मान करते हैं। मेरा अवधूत जी से काफी पुराना सम्पर्क है इसलिये वे मुझे भी भली भांति जानते पह-चानते हैं। इस बार जब मुझे मिले तो उनसे कहा कि अब तो मैंने योग मार्ग में दीक्षा प्राप्त कर ली है। कहने लगे किस के चक्कर में फँस गये। मैंने कहा महाराज आपको भी पूछने की आवश्यकता है? इतना तो आप स्वयम् ही जान सकते है कि मेरे गुरुदेव कौन हैं और वे कैसे हैं। तब हंस कर कहने लगे अच्छा बतलाते हैं। जो कुछ उन्होंने बतलाया वह संक्षेप में इस प्रकार है तुम्हारे गुरुदेव का शुभ नाम श्री 'चन्द्रमोहन' है। वे ऋतम्भरा प्रज्ञाप्राप्त समर्थ योगिराज हैं। महासिद्ध श्रेणी के हैं। उनके दृष्टिपात से मनुष्य निहाल होकर परम कल्याण को प्राप्त हो सकता है। वे रूहानी ताकत के भंडार हैं। हर समय उनके शरीर वाणी एवं दृष्टि द्वारा अलौकिक दिव्य तेज की किरणें निकला करती हैं जिनका प्रभाव क्षेत्र अपरिमित है। तुम्हें यह सब कुछ अभी दिखाई नहीं देता है। तुम धन्य भाग्य हो जो श्री हनुमानजी की कृपा से ऐसे महापुरुष सद्गुरुदेव के रूप में मिल हैं।" श्री अवधूत महाराज के मुख से अपने गुरुदेव की महिमा सुन कर मन को अतीव आह्लाद हुआ और श्री सिद्ध गुफा संवाई आश्रम वाले दिव्य दृश्य का रहस्य समझ पाया कि वह सब श्रीसद्गुरुदेव जी द्वारा जन समूह पर की गई 'शक्तिपात' का प्रभाव था जो व्यक्तियों के संस्कारों के अनु-सार साक्षात् फलीभूत हो रहा था।

आज मानव जाति का दुर्भाग्य पूर्ण काल है। जड़वाद चरम शिखर पर है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन नश्वर वस्तुओं की ऊपरी तड़क भड़क खाने पीने तथा चैन करने के निमित्त

ईश्वर है, इन्द्रियजन्य सुख ही उसकी शांति एवं सम्पूर्णता का लक्ष्य है। आज संसार ऐसे पाखंडी गुरुओं से भरा पड़ा है जो केवल अपनी वाक् विद्वता के आधार पर ही भोले भाले लोगों से धर्म के नाम पर पूजा कराया करते हैं। वास्तव में ऐसे लोग समाज के ऊपर बोझ हैं। यह बात तो सभी जानते हैं कि सत्य बोलना चाहिये परन्तु सत्य में संयम करने से जो रूहानी शक्ति मनुष्य में आती है क्या वह इन पाखंडियों में है? उन्होंने तो केवल शास्त्र अध्ययन के आधार पर वाक् विद्वता प्राप्त की है, शास्त्र अध्ययन को उन्होंने पचाया नहीं है, उसके ज्ञान की उन्हें डकार नहीं आई है। मानव जाति के ऐसे दुर्भाग्य पूर्ण काल में उसे पतन से बचाने के लिये ऐसी महान आत्माओं का जन्म हुआ करता है जो लोक कल्याण के लिये अपने विचारों कर्मों तथा आदर्शों द्वारा 'जड़वाद' और 'ईश्वरवाद' में समन्वय स्थापित किया करते हैं। ये महान विभूतियाँ संसार के इन्द्रिय जन्य सुखों एवं माया के सुदृढ़ पाश को ज्ञान रूपी तलवार से काटकर मानव कल्याण के लिये समाज में आध्यात्मिक शक्ति प्रवाहित किया करते हैं। ये दिव्य विभूतियाँ 'दैवी संप.' की खान होती हैं। धर्म वृत्ति, निर्भयता, ज्ञान, समता, इन्द्रियदमन, तप, सरलता, अहिंसा सत्य, अकाम, अक्रोध, त्याग, शान्ति दया, मर्यादा, तेज, क्षमा, धैर्य, निरभिमानता शुद्धि आदि जितने भी दैव गुण शास्त्रों में कहे गये हैं इन विभूतियों में पाये जाते हैं। ऐसी ही महान विभूतियों में से 'मेरे गुरुदेव' हैं योगियों के मंडल में वेदेव वन्दित महासिद्ध हैं। सूर्य के समान चमक रहे हैं। कितना ही जानलें फिर भी इस अनन्त योगिराजा के के विषय में बहुत कुछ जानना शेष बच रहेगा ऐसा मुझे लगता है। अपनी बाल्यावस्था में ही मेरे गुरुदेव खेल-खेल में ही समाधि लगाते और चित्त निर्माण किया करते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन तपोमय एवं उज्ज्वल रहा है। परमात्मा हजार फनों वाले शेष नाग पर सोते हुये भी जिस प्रकार शांत एवं मृदु रहते हैं मेरे गुरुदेव हजारों कर्म करते हुये भी रत्ती भर क्षोभ तरंग अपने मानस सरोवर में नहीं उठने देते। न जाने कितने भक्तों को उनकी करुणा कृपा से समाधि लाभ प्राप्त हुआ है, कितनों की उच्च ध्यान स्थितियाँ परिपक्व होती जा रही हैं और कितनों को योग विद्या का गूढ़ रहस्य पाकर प्रकाश मिल रहा है। जो उनके सम्पर्क में आता है। खिंचता ही चला जाता है।

अपने प्रवचनों में प्रायः मेरे गुरुदेव बतलाया करते हैं कि दम्भ, क्रोध, काम तथा अज्ञान के पर्वत रास्ते में अड़े हैं और नारायण उनके उस पार है। आज बहुत कम लोगों को सूक्ष्म जगत की क्रियाओं को जानने की इच्छा है और जिनको है उनमें से अधिकतर यह चाहते हैं कि बिना प्रयास और परिश्रम किये सब कुछ प्राप्त हो जाय। पर ऐसा होने वाला नहीं है। पहले मनुष्य को अपने अन्दर

मोर्चा जमाये दुर्गुण रूपी सेना को नष्ट करना होगा। जो इस कठोर संघर्ष को जीत लेगा नारायण प्राप्ति का अधिकारी होगा। इसी लिये मेरे गुरुदेव योग के विद्यार्थियों को यह उपदेश दिया करते हैं कि उनके जीवन की समस्त क्रियायें सेवामय श्रद्धामय तथा ज्ञानमय होनी चाहिये, आत्म शोधन के लिये ज्ञान यदि साबुन का काम करता है तो श्रद्धा पानी का। दोनों के मेल से ही शोधन सम्भव है। बहुत कुछ सुनकर अथवा पढ़कर जिनकी बुद्धि चक्कर में पड़ गई है और मन की एकाग्रता के स्थान पर अनेकाग्रता अथवा शून्यता रहती है उन्हें चाहिये कि वे पढ़ना बन्द करके आध्यात्मिक गुरुओं की खोज करें, उनकी शरण लें। वहाँ उन्हें जीवन ग्रन्थ पढ़ने को मिलेगा। वहाँ का मौन व्याख्यान सुनकर वे छिन्न संशय हो जायेंगे। योगशास्त्र ने सूक्ष्म के वे नियम ढूँढ़ निकाले हैं जो भौतिक नियमों से अतीत हैं और समस्त शिक्षा का रहस्य हैं। यह ऐसी विद्या है जिसके जानने से सब कुछ जान लिया जाता है। योगाग्नि अशेष पाप पंजर को शीघ्र ही जला देती है योग ही परम तप है योग ही ज्ञान और धर्म का लक्षण है। अतः प्रयत्न के साथ योग का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिये।

जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक गुरुदेव के द्वारा निर्दिष्ट विधि से योग का अभ्यास करते हैं उनका मन शक्ति वाला बन जाया करता है एवं लौकिक कठिनाइयाँ संकल्प मात्र से ही दूर हो जाया करती है। अपने प्रयत्नशील श्रद्धालु बालकों पर गुरुदेव जी की सतत करुणा कृपा रहा करती है। मैं ऐसे अनेक भाई बहनों को जानता हूं जिनको अनेक रूपों में करुणानिधि कल्याणघन गुरुदेव की कृपा प्राप्त हुई है। हालांकि गुरुदेव की करुण कृपा के दृष्टांत असंख्य हैं जिनका समावेश इस छोटे से लेख में करना वह भी मुझ जैसे अल्प बुद्धि के लिये बिल्कुल असम्भव है फिर भी जिज्ञासु भाइयों की सेवा में एक दो घटनाओं का उल्लेख करने का मन मे संकल्प बन आया है। कातिक मास में आनन्द कन्द लोक पावन श्री गुरुदेव जी का योग प्रचार कार्य-क्रम चंडीगढ़ में चल रहा था। मैं भी चार पाँच दिन श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में वहाँ पर रहा और गुरुदेव जी की आज्ञा पाकर बहन राजकुमारी जी के घर पर निवास किया। मैंने देखा कि बहन जी का कृपा सिन्धु के चरण कमलों में अगाध प्रेम है। मैंने बहिन जी से पूछा कि किस प्रकार तुम्हें इन श्री चरणों में इतना आकर्षण उत्पन्न हुआ। इतना कहना था कि बहन जी प्रभु प्रेम में भाव विभोर हो उठी। बड़े प्रेम से मुझे समझाने लगीं कि करुणार्णव श्री गुरु देव की कृपा का कहाँ तक वर्णन करूँ। वे दया निधि हर समय मेरे परिवार के रखवाले है। अपनी बीमारी का जिक्र करते हुये बहिन जी ने बतलाया कि मै वर्षों से घातक शारीरिक रोग की वेदना पाते-पाते इतनी दुर्बल हो गई थी कि हाथ पैर हिलाना तक सम्भव नहीं था। डाक्टरों को आपरेशन के अलावा

और कोई उपचार दिखाई न दिया। अन्तिम परीक्षण के समय आपरेशन होना निश्चित हो गया। इस जीवन-मृत्यु के संघर्ष के समय अचानक मुझे पतित पावन श्री गुरुदेव जी के दर्शन हुये और कहने लगे राजकुमारी तू घबरा मत, तेरा आपरेशन नहीं होगा। ले हम तुझे अभी अच्छा कर देते हैं और तुझे तेरे पति से मिलाये देते हैं। उधर डाक्टरों का दिमाग पलटा और स्वयम् ही उन्होंने ऑपरेशन करने की योजना समाप्त करदी। उस दिन के पश्चात् मेरा स्वास्थ तीव्र गति से सुधरने लगा और अब मैं उन योगेश्वर की कृपा से पूर्ण रूपेण स्वस्थ हूं। श्री गुरुदेव जी के योग प्रचार के दूसरे दिन की बात है। बहिन जी दिन भर घरेलू कार्यों मे अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण लगभग आठ बजे ही निद्राग्रस्त हो गई और श्री प्रभु जी की सामूहिक आरती में सम्मलित न हो सकीं। अचानक बहन जी के मुह पर जल के छींटे पड़े और उनकी निद्रा टूट गई। तुरन्त दौड़ी हुई वहाँ पर पहुंची जहाँ भक्त समुदाय सामूहिक आरती में मस्त था। बहिन जी के आने के थोड़ा देर पूर्व ही तो श्री गुरुदेव जी ने श्री प्रभु चरणामृत छिड़क कर जन समूह को शीतल किया था। बाद में बहिन जी लगभग पूरी रात भर ध्यानस्थ रहीं। आरती के समय बच्चों युवा एव वृद्ध स्त्री पुरुषों की जो ध्यान स्थितियाँ बनती थीं और जिन्हें मैंने स्वयम् देखा उन सब का वर्णन करूंगा तो लेख का आकार अधिक बढ़ जायगा परन्तु बहन मनोरमा के विषय में थोड़ा सा उल्लेख करने की मन में उत्सुकता हुई है। बहिन मनोरमा प्रोफेसर सूद की धर्मपत्नी है। वे एम०ए० तक शिक्षित है। चण्डीगढ़ के गुरु भाइयों ने मुझे बतलाया था कि पहले इस प्रकार के सत्संगों को बहन जी ढोंग मानती थीं और अपने पति देव का - गुरु प्रेम उन्हें अच्छा नहीं लगता था इसलिये उनका विरोध किया करती थीं। पहले कुछ भी रहा हो लेकिन अब मैंने उन्हें देखा तो वे एक आदर्श गुरुशिष्या के रूप में दिखाई दीं। उनके हृदय में श्री करुणा निधि के प्रति अपार प्रेम एवं श्रद्धा है। बहन जी को नित्य नियम से सत्संग में आते देखा। सत्संग में आते ही बहन जी ध्यानस्थ हो जाती थीं। ध्यानावस्था में उनकी आंखे मुंदी रहती थी। आश्चर्य की बात तो यह हुआ करती थी कि बहन जी किसी भी स्थान पर बैठी हो मुंदी आंखों से जहां पर श्री गुरुदेव जी विराजमान होते वहाँ पहुंचती थीं और बीच में बैठे हुए किसी व्यक्ति को छूती तक नहीं थीं। जहाँ पर भीड़ के कारण पैर रखने की जगह न होती तो बहन जी लम्बी छलांग लगाकर श्री गुरुदेव के चरण कमलों तक पहुंचती थीं। इस घटना से यह स्पष्ट है कि बाहर के नेत्र गोलक बन्द रहते हुये भी बहिन मनोरमा को सब कुछ दिखाई देता था। यही तृतीय नेत्र अथवा दिव्य चक्षु का प्रभाव होता है जो गुरुदेव की परम अनुकम्पा से प्राप्त हुआ करता है। इस घटना को देख कर अनेक नास्तिक विद्वानों ने भी

गुरुदेव के चरणों में सिर झुकाया और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। हम जैसे अल्पज्ञ उनकी महिमा का क्या बखान कर सकते हैं उन करुणानिधि को वही जान सकता है जिसे वे स्वयम् जानते हैं। मेरे गुरुदेव के सत्संगों में निरन्तर शक्तिपात हुआ करता है जो पतित मानव के कल्याण का कारण हुआ करता है।

मेरे गुरुदेव ऐसे हैं जिनके संकल्प कभी असत्य नहीं होते। यह खूबी ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त संतों में मिलती है। गुरुदेव से सम्बन्धित इस प्रकार की अनेक घटनायें हैं जिनमें से एक घटना का यहां पर उल्लेख करना शक्ति की ओर संकेत मात्र करने के लिये पर्याप्त होगा। चार अप्रैल १९६९ को गुरुदेव शामली पधारे थे। आगामी कार्यक्रम के विषय में चर्चा चली तो गुरुदेव महाराज ने बतलाया कि ६ तारीख को सहारनपुर पहुंच कर 'अमृतसर-हावड़ा मेल' पकड़ेंगे और 'मच्छावाड़ा' पहुंचेंगे। इस पर एक गुरुभाई ने कहा कि महाराज जी यह ट्रेन तो सहारनपुर से रात्री के डेढ़ बजे के लगभग छूटती है और इस गाड़ी से प्रोग्राम बनाने में तो आपको रात भर सोना नहीं मिलेगा। मुझे भली भांति याद है कि उस भाई ने श्री गुरुदेव जी से इस गाड़ी से प्रोग्राम न बनाने का आग्रह किया। अपने प्यारे बालक के प्रेम भरे हृदय को परख कर गुरुदेव बोले क्या उस दिन यह गाड़ी देर से नहीं जा सकती? तुम चिन्ता न करो हम प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत होकर ५ बजे स्टेशन पर पहुंचेंगे। गाड़ी हमें फिर भी मिल सकती है। इधर मेरे मन में गुरुदेव द्वारा की गई इस भविष्यवाणी की सत्यता का निश्चय करने की इच्छा हुई और उसी दिन मैंने स्टेशन मास्टर सहारनपुर को एक जवाबी पत्र लिखा जिसमें उनसे प्रार्थना की थी कि वे ६ तारीख को उक्त गाड़ी का सहारनपुर से छूटने का समय लिख भेजें। अपने कई साथियों को भी मैंने उसी दिन इस पत्र डालने के विषय में सूचना दे दी। कई दिन की उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा के पश्चात् १८ तारीख को स्टेशन मास्टर का जवाब मिला जिसमें लिखा था कि उक्त दिन यह गाड़ी रोजना के नियत समय से साढ़े तीन घण्टे से भी अधिक लेट आई और इतनी ही देर से छूटी। गाड़ी स्टेशन से सुबह के सवा पांच के बजे पश्चात् छूटी थी।

श्री गुरुदेव जी का सम्पूर्ण जीवन योग प्रचार एवं लोक-कल्याण के लिये समर्पित है। देश के कोने कोने में उन्होंने योग की धूम मचाई है। यह योग सेनानी लाखों पतित व्यक्तियों के कल्याण का हेतु है, असंख्य लोगों को यौगिक साधनों तथा 'जीवन तत्व साधन' द्वारा आरोग्य प्रदान कर रहे हैं। प्रवचनों के अतिरिक्त जन साधारण तक अपने विचार पहुंचाने के लिये गुरुदेव 'सिद्धयोग' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं जिसमें आध्यात्मिक विषयों पर लिखे गये लेखों द्वारा योग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। गुरुदेव की 'आठ योगी,' 'समाधिस्थ योगि-नियां,' 'ब्रह्मचारी गोपालानन्द,' 'स्वामी मुल-

सराज,' 'संबाई के चमत्कार चरित्र' आदि पुस्तकें हैं जो योग के जिज्ञासुओं के लिये सब प्रकार से कल्याणकारी हैं। जो इन पुस्तकों को श्रद्धापूर्वक मन लगाकर पढ़ेंगे और पचायेंगे उनकी योग प्रवृत्ति अवश्यमेव बढ़ेगी।

गुरुदेव प्रायः कहा करते हैं कि मनुष्य बचपन खेल कूद में खोदेता है, जवानी विषयों के चिन्तन और भोग में व्यतीत कर देता है। और जब वृद्ध हो जाता है तब शरीर साथ नहीं देता। इसलिये जब तक मौत की घड़ियां दूर हैं और शरीर स्वस्थ है मनुष्य को चाहिए कि सधर्म पूर्वक योग का अभ्यास करे अन्यथा कोरा इन्द्रियों का गुलाम बना रहेगा।

प्रयत्न करते रहने पर सफलता मिलती ही है

निर्विकल्प समाधि की साधना में सफलता न मिली तो महर्षि उद्दालक बड़े निराश हुये असफल होकर जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है यह विचार कर वे निराहार रहकर शरीर सुखाने लगे। वृक्ष पर एक बीसथ नाम का तोता रहता था उसने संतप्त और सजल नेत्रों से ऋषि की ओर देख कर कहा भगवान यह शरीर तो मरणधर्मा है ही इसे यों सुखाने में पुरुषार्थ क्या हुआ अमृतत्व की प्राप्ति का प्रयास ही तो मनुष्य का सच्चा पुरुषार्थ है। बार बार प्रयत्न करने वाले और असफलताओं से खिन्न न होने वाले ही लक्ष्य प्राप्त करते हैं क्या आपको यह विदित नहीं। शुक की बात महर्षि के हृदय में प्रवेश कर गई। अपने प्रयत्न फिर से प्रारम्भ कर दिये जिससे उन्हें निर्विकल्प समाधि की अवस्था प्राप्त हो गई।

मनुष्य श्रेष्ठ या निकृष्ट

एक सभा में वाद विवाद चल रहा था। एक पक्ष कहता था कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है क्योंकि वह सभी जीवधारियों को वश में कर लेता है। दूसरा पक्ष कहता था कि मनुष्य कुत्ते से भी गया बीता है क्योंकि इसमें असंयम की प्रवृत्ति है। निर्णय न निकल रहा था। विवाद बढ़ता ही जाता था। एक ज्ञानी उधर से जा रहे थे सर्व सम्मति से उनकी सम्मति लेना तय हुआ। ज्ञानी ने दोनों पक्षों की बात सुनी और बोले भाई मनुष्य जब तक सत्कर्म करता है तब तक वह सर्वश्रेष्ठ है किन्तु जब वह दुष्कर्म करने लगता है तभी वह नीच बन जाता है उनके उत्तर से दोनों पक्ष सन्तुष्ट हो गये।

कर्म--फल--त्याग

स्व० श्री साने गुरु

गीता ने कर्म-फल-त्याग सिखाया है। अपनी रुचि का सेवा-कार्य हमें ज्ञान विज्ञान-पूर्वक निष्ठा से, मन से तथा अपने वर्ण के अनुसार करना करना चाहिए । उस कर्म को उत्कृष्टता के साथ पूरा करने के लिए जीवन को संयत करना चाहिये। आहार-विहार नियमित बनाना चाहिए शरीर और मन प्रसन्न व नीरोगी रखना चाहिए। इस प्रकार जीवन की सार्थकता का लाभ लेना चाहिए। सेवा-कर्म करते-करते उसे उत्तरोत्तर अधिक तन्मयता के साथ करते--करते एक दिन सारी सृष्टि के साथ स्नेह जोड़ना है, मन का भेदातीत बनाकर केवल चिन्मय साम्राज्य में ही रमना है।

लेकिन इस सब का साधने के लिए एक और चीज की जरूरत है, एक और दृष्टि की आवश्यकता है । वह दृष्टि है फल की आशा नहीं रखना। कर्म में इतने तल्लीन हो जाना चाहिए कि फल का विचार करने का समय ही न मिले। जीवन कर्म मय ही हो जाय। जनाबाई कहती थी —" प्रभु ही खाना प्रभु ही पीना" । प्रभु से यहाँ मतलब है अपने ध्येय से, अपने सेवा-कर्म से। इस सेवा कर्म को ही खाना है, सेवा--कर्म को ही पीना है। इसका मतलब यह है कि खाते हुए भी हमें कर्म का विचार हो और पीते हुए भी कर्म का विचार। सोते हुए भी कर्म का चिन्तन हो। गांधीजी ने पहले एक बार कहा था कि मुझे हरिजनों की सेवा के ही स्वप्न दिखाई देते है ऐसा दिखाई देता है कि मन्दिर खुल रहे हैं । स्वामी रामतीर्थ को स्वप्न में कठिन प्रश्नों के हल दिखाई देते थे । अर्जुन के बारे में भी ऐसी ही बात कही जाती है। श्रीकृष्ण का अर्जुन पर अधिक प्रेम देखकर उद्धव उससे ईर्ष्या रखता था। यह बात श्रीकृष्ण के ध्यान में आई। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा—"उद्धव जाओ और यह देख आओ कि इस समय अर्जुन क्या कर रहा है।" उद्धव चले। अर्जुन अपने कमरे में गहरी नींद में सोया था; लेकिन वहाँ 'कृष्ण-कृष्ण' की मधुर ध्वनि सुनाई देती थी। वह ध्वनि कहाँ से आती है, इसकी खोज उद्धव करने लगा। वह अर्जुन के पास गया उसे क्या दिखाई दिया ? अर्जुन के रोम--रोम से 'कृष्ण-कृष्ण' की ध्वनि निकल रही थी। अर्जुन का जीवन कृष्ण के प्रेम से ओत-प्रोत था। नानक ने कहा है—'हे ईश्वर आपका स्मरण श्वासोच्छ्वास के साथ-साथ होने दो, भगवान् के स्मरण के बिना जीवन असह्य होने दो । उनका स्मरण ही मानो जीवन है। उनका विस्मरण मानो मृत्यु। उनका स्मरण मानो सारे सुख और उनका विस्मरण मानो सारे दुःख।

"विपद विस्मरणं विष्णोः सपन्नारायणस्मृतिः।

और भगवान् का स्मरण ही मानो ध्येय का स्मरण है, स्वकर्म का, स्वधर्म का स्मरण। हममें जिसके लिए जीने और मरने की भावना पैदा होती है वही हमारे लिए ईश्वर

स्वरूप है। वही हमारा ईश्वर है। और उसके चिन्तन में हमेशा निमग्न रहना ही परम सिद्धि।

मनुष्य स्वकर्म में इतना निमग्न कब हो सकेगा? जब वह उस कर्म के फल को भूल जायगा। छोटा बच्चा आम की गुठली को जमीन में गाड़ता है। दूसरे दिन वह उसे फिर खोदकर देखता है। उसे यह देखने की बड़ी उत्कण्ठा रहती है कि उस में अंकुर फूटा या नहीं; लेकिन यदि वह गुठली बारबार खोदकर देखी गई तो उसमें कभी अंकुर नहीं फूट सकेगा। उनमें कभी भी बौर नआ सकेंगे। रसवाले फल नहीं लग सकेंगे। इसके विरुद्ध यदि उस गुठली को प्रतिदिन पानी पिलाया गया, उसमें खाद दिया गया, उसके पत्तों को बकरी से बचाने के लिए उसके आस-पास कांटे की बाड़ लगा दी और इस प्रकार यदि कोई आदमी उस आम का उगाने के के काम में लग गया तो एक दिन उसमें रस-वाले फल आये बिना न रहेंगे।

यदि गहराई से देखा जाय तो मालूम होगा कि मनुष्य का सच्चा आनन्द फल में नहीं कर्म में है। अपने हाथ-पैर, अपना हृदय अपनी बुद्धि के सेवा-कर्म में मग्न हो जाने में ही आनन्द है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध इतिहासकार गिबन ने जिस दिन मध्य रात्रि के समय अपना बड़ा इतिहास लिखकर समाप्त किया उस समय वह रोया। बारह बज गये थे। रात्रि का सन्नाटा छाया हुआ था। उसने अन्तिम वाक्य लिख डाले। गिबन २५ वर्षों से यह काम करता आ रहा था। इन दिनों उसका प्रत्येक क्षण आनन्द से व्यतीत हुआ; लेकिन उस इतिहास के समाप्त होते ही उसे बुरा लगा। वह बोला— "अब कल क्या करूँगा? अब कल आनन्द कहाँ रहेगा? अब क्या पढ़ूँ? क्या लिखूँ?" इस कर्म के करने में ही उसे आनन्द था।

बच्चे खेलते हैं। खेलते समय उनके मन में यह विचार नहीं होते कि इससे हमें इतना व्यायाम होगा हमारे शरीर सुधरेंगे। यदि बच्चे इस विचार से खेलें तो उनको खेल का आनन्द नहीं मिल सकेगा। क्या अट्या-बट्या खेलते हुए खिलाड़ी के मन में यह विचार रहता है कि मेरी जांघों का व्यायाम हो रहा है? इस विचार से तो वे घेरा नहीं तोड़ सकते। बच्चे खेल के लिए खेलते हैं। उनसे उन्हें जो व्यायाम का फल मिलता है खेलते समय उसकी ओर उनका लक्ष्य नहीं होता।

इसका यह मतलब नहीं कि खिलाड़ी को व्यायाम का फल नहीं मिलता। उनका स्वा-स्थ्य अच्छा रहता है। वह प्रसन्न रहता है। उसका मन प्रफुल्ल रहता है। उसे कितने फल मिलते हैं। खेलने आने के पूर्व उसके मन में व्यायाम का विचार रहता है। वह सोचता है कि यदि मैं रोज खेलूं तो मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। पहले मन में फल का विचार रहता है। लेकिन जहां कर्म शुरू हुआ कि फल को भूल जाना चाहिए। तब फिर वह

कर्म ही धर्म प्रतीत होना चाहिए। वह साधन ही साध्य रूप में प्रतीत होना चाहिए। प्रत्येक प्रयत्न मानो कर्म सिद्धि है प्रत्येक दौड़ मानो विजय है। यह अनुभूति होनी चाहिए कि हमारा प्रत्येक कदम ध्येय प्राप्ति के लिए है। प्रयत्न ही मानो सफलता है।

बेलदार हाथ में हथौड़ा लेकर पत्थर तोड़ता रहता है मान लीजिये यदि पत्थर दस चोट में नहीं टूटा और ११ वीं चोट में टूट गया तो क्या वे पहली १० चोटें व्यर्थ गई ? प्रत्येक चोट पत्थर के अणुओं के उपर आघात कर रही थी प्रत्येक चोट ध्येय की ओर ले आ रही थी।

कर्म उत्कृष्ट करने के लिए ही कर्म-फल-त्याग की जरूरत होती है। फल का सतत् चिन्तन करने की अपेक्षा जो कर्म में ही रम जाता है उसे अधिक बड़ा फल मिलता है। क्योंकि पद-पद पर फल का चिन्तन करते रहने वाले का बहुत सा समय चिन्तन में ही चला जाता है। जो किसान पद-पद पर यह चिन्ता करता हुआ बैठा रहे कि यदि वर्षा न हुई तो अच्छा भाव नहीं हुआ तो चूहे लग गये तो घौर फल की चिन्ता करता रहे तो उके मन में अनन्त आशा नहीं रह सकेगी उसके कर्म उत्कृष्ट नहीं हो सकेंगे। इसके विरुद्ध जो किसान कर्म में रंग गया है खाद डालता है, सिचाई करता है निराई करता है और दूसरी बात सोचने का जिसके पास समय ही नहीं है इसमें कोई शंका नहीं की उसे अधिक उत्कृष्ट फल मिलेगा।

कमल के फूलों को तो आप जानते ही हैं। उसके बारे में रामकृष्ण परमहंस एक बात हमेशा कहते थे कमल विकास चाहता है। रात दिन कीचड में पैर गड़ाकर वह इसके लिए प्रयत्न करता रहता है। वह सूर्य की ओर मुँह करके खिलने का प्रयत्न करता है। उस कमल की साधना एक सी अखण्ड चलती रहती है। वह अपना विकसित होना भूल जाता है। मानो फल को ही भूल जाता है। वह ठंड धूप हवा वर्षा कीचड आदि में रहकर ही प्रयत्न करता रहता है। लेकिन एक दिन आता है जब कि वह कमल अच्छी तरह खिलता है उसे सूर्य की किरण चूमती है हवा झूलाती है गीत सुनाती है। कमल को इस बात का ख्याल ही नहीं रहता है कि मैं खिल रहा हूं। उसे मालूम ही नहीं होगा कि मैं सुगन्ध से पवित्रता से पराग से भर रहा हूं। अन्त में भ्रमर गुंजार करता हुआ आता है। वह कमल की प्रदक्षिणा करता है और कमल के अन्तरंग में प्रवेश करके कहता है — पवित्र कमल तू खिल चुका है। तुझमें कितनी सुगन्ध है तेरा कैसा सुन्दर रंग है तुझमें कितना मीठा रस है ?

मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात होनी चाहिए। उसे फल को भूल जाना चाहिए। यदि फल उसके चरणों पर आकर गिर जाय तो भी उसे उसपर दृष्टि नहीं डालनी चाहिए। ध्रुव के सामने प्रत्यक्ष भगवान आकर खड़े हो गए फिर भी उनकी आंखें बन्द ही रहीं। वह तो नारायण के

चिन्तन में तल्लीन हो गया था। साधना में इतनी समरसता का होना महत्व की बात है।

भारतीय संस्कृति साधना सिखाती है। अधीर मत बनो उल्लू मत बनो फल के लिए लालायित मत रहो विह्वल मत बनो। महान् फल चुटकी मारते ही नहीं मिलते। उसके लिए अनन्त साधना और अखण्ड अविरत श्रम की आवश्यकता रहती है। बरगद का बड़ा पेड़ दो दिन मे इतना नहीं बढ़ता। मैथी की सब्जी दो दिनों में उग आती है और चार दिन में सूख जाती है लेकिन एक बार बरगद का पेड़ जम जाता है तो फिर हजारों लोगों को छाया देता है। उसकी शाखायें आकाश को छूने लगती हैं। उसका सिर आकाश से लग जाता है और जड़ पाताल गंगा से भेंट करती है। लेकिन यह स्पृहणीय और महान् प्रसार इस महान् वैभव की प्राप्ति करने के लिए पत्थर कंकर में जड़ें जमाने के लिए उस वटवृक्ष को कितने वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ता है।

विनता और कद्रू की कहानी तो सुप्रसिद्ध है'। कद्रू के यहां जब एक हजार सर्प के बच्चे हुए तो विनता अधीर हो गई। उसने एक अण्डा फोड़ा लेकिन वह परिपक्व नहीं हुआ था। उसमें से लंगड़ा लूला अरुण निकला। विनता दुखी हो गई। उसे अपनी जल्दबाजी का इनाम मिल गया लेकिन अपने अनुभव से वह होशियार बन गई। उसने दूसरा अण्डा नहीं फोड़ा। वह एक हजार वर्ष तक ठहरी रही और एक हजार वर्ष के बाद पक्षिराज गरुड बाहर निकले और वह भगवान विष्णु के वाहन बन गए।

यदि अपने कर्म के कमजोर फल नहीं चाहते हो और ऐसे भव्य दिव्य फल चाहते हो तो उसके लिए सैकड़ों वर्षों तक परिश्रम करना पड़ेगा-साधना करनी पड़ेगी। आज भारतीय संस्कृति के उपासक साधना भूल गए हैं। वे चुटकी में फल चाहते है। वे जल्दी ही स्वतन्त्रता चाहते हैं लेकिन वे लाखों ग्रामों मे जाकर वर्षों तक साधना करना नहीं चाहते। क्रान्ति क्षणभर में नहीं होती। राष्ट्रीय शिक्षा के आचार्य विजापुरकर ने एक बार कहा-अंग्रेजों को राज्य प्राप्त करने मे १५० वर्ष लग गये। अब उनको निकालने मे ३०० वर्ष लगेंगे इसी विचार से हम को हमेशा प्रयत्न करते रहना चाहिए।

कर्म फल त्यागी मनुष्य कभी निराश नहीं होता। क्योंकि फल पर उनकी दृष्टि ही नहीं होती। जो निरन्तर फल का चिन्तन करता रहेगा वह दुखी होगा निराश होगा। भगवान बुद्ध ने एक एक गुण प्राप्त करने के लिए एक-एक जन्म लिया था। जीवन की पूर्णता प्राप्त करने में उन्हें सैकड़ों जन्म लेने पड़े।

भगवान् की प्राप्ति के लिए कितनी ही साधना आप क्यों न करें वह थोड़ी ही है। ध्येय की प्राप्ति के लिए ऐसी ही अमर आशा होनी चाहिए। प्रयत्नों से, कष्टों और परिश्रम से घबराना नहीं चाहिए। उत्तरोत्तर अधिक उत्कृष्ट कर्म होने चाहिए। जो हजारों

वर्ष तक परिश्रम करने के लिए तैयार है उसे इसी घड़ी फल मिल जायगा।

लेकिन अपने मन का सन्तोष का फल तो हमेशा मिलता रहता है। "मैं अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहा हूँ, आवश्यकता से अधिक परिश्रम कर रहा हूँ," मेरे इस आन्तरिक समाधान को कौन छीन सकेगा? हमें यह शरीर, देह बुद्धि और हृदय मिला है। ईश्वर ने हमें यह पूँजी पहले से ही दे रखी है। हमें यह जो मिला है उससे ऋण मुक्त होने के लिए सेवा करनी चाहिए। समाज हमें बहुत कुछ देता है। सृष्टि भी हमको कुछ दे रही है। उसके ऋण से उऋण होने के लिए काम में जुटे रहना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

और यदि हमें फल न मिले तो भी समाज अमर है व्यक्ति चला जाता है; लेकिन समाज चिरंतर है। काम करने वाले जाते हैं; लेकिन काम तो शेष रह ही जाता है। उस काम को पूरा करने के लिए समाज है ही। मेरे शेष बचे हुए काम को कौन अपने हाथ में लेगा? मेरे हाथों लगाये वृक्ष को कौन पानी पिला गया? मेरे श्रम का फल तो किसी न किसी न किसी को मिलेगा ही और वह जिसको भी मिलेगा वह तो मेरा अपना ही है। उसमें और मुझमें कहाँ भेद है?

हमारी संस्कृति में अदृष्ट फलों की एक मधुर कल्पना है। उथली बुद्धि के लोग इस कल्पना का मजाक उड़ाते हैं; लेकिन जैसे—जैसे इस कल्पना का विचार करते हैं वैसे २ आनन्द होता है। तुम्हारे प्रयत्नों के फल मिलेंगे; लेकिन वह तुमको प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देंगे। तुम्हारी कल्पना के दिव्य चक्षुओं से ही वह दिखाई देंगे। न दिखने वाला फल तुम्हें अवश्य मिलेगा। हिन्दुस्तान के स्वराज के लिए कितने बड़े बड़े व्यक्ति जन्म भर कष्ट सहते रहे लेकिन फल अब दिखाई दे रहा है। मुझे यह देश की प्रियभूमि स्वतन्त्र और मुक्त दिखाई दे रही है। मुझे ऐसा हिन्दुस्तान दिखाई दे रहा है जिसमें रोग-अकाल नहीं है अज्ञान नहीं है, रूढ़ि कहीं नहीं है, झगड़े नहीं हैं, टण्टे नहीं हैं, द्वेष नहीं है, मत्सर नहीं है सारी जातियाँ और धर्म एक-दूसरे से हिल-मिलकर रहते हैं। सबके पास अनाज है, वस्त्र है, रहने के लिए घरबार है।" न्यायमूर्ति को अपनी विशाल दृष्टि से, शास्त्रपूत और श्रद्धा पूत दृष्टि से वे अदृश्य फल दिखाई दे रहे थे लोगों को अपने श्रम का अवश्य फल मिलेगा, उनका श्रम व्यर्थ नहीं जायगा। संसार में कोई बात व्यर्थ नहीं जाती।

अदृश्य फल का एक और भी अर्थ है। नदी बहती है। कितने ही वृक्षों और बेलों को वह जीवन प्रदान करती है; लेकिन वह यह बात नहीं जानती। उसके उदर में कितने ही जलचर समाये हुए हैं लेकिन उसे इसकी जानकारी ही नहीं। उसे इस बात की भी जानकारी नहीं होती कि उसने कितनी भूमि उपजाऊ और समृद्ध की है। उसे यह बात भी मालूम नहीं होती कि उसके कारण कितने कुओं में पानी आया है। नदी बहती है। रात दिन काम करती रहती है। वह नमी पैदा करती है। लेकिन उसे क्या मालूम कि यह नमी कहाँ, किसे और कितनी मिलती है। इस फल के बारे में उसे क्या मालूम! यह उसे दिखाई ही नहीं देता। लेकिन यह फल उसके नाम पर जमा है। यह उसके कर्मरूपी वृक्ष में लगे हुए अनन्त फल है।

सहारनपुर में :—

विजया दशमी पर्व पर श्री सद्गुरुदेव का जन्मोत्सव
और
योग प्रचार का व्यापक कार्य्यक्रम

[श्री ओमप्रकाश मित्तल द्वारा प्रेषित]

विजय दशमी महोत्सव के विशेष महत्व से प्रायः हम सभी सत्संगीगण परिचित हो चुके हैं। इसी पावन दिवस को परम तत्व रूपी सद्गुरुदेव सत्ता का हमारे आराध्यदेव पूज्यपाद श्री सद्गुरुदेव भगवान के स्वरूप में आविर्भाव हुआ था। अस्तु, यह पावन दिवस हम सबके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण पर्व बन गया है। हम सभी का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि हम लोग इस पवित्र एवं कल्याणप्रद पर्व को पारस्परिक सहयोग से भव्यरूप में खूब धूम-धाम से मनावें। विजयदशमी पर्व के इस महत्व की खोज का श्रेय हमारे दिल्ली निवासी सत्संगी प्रोफेसर श्री ऋषिराम जी गुप्त को है जिन्होंने इस पवित्र पर्व को दिल्ली में ही अनवरत रूप से १९६२ तक मनवाया और अन्यान्य मंडलों के सत्संगियों को अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग किया।

हमारी सभा को इस पवित्रतम पर्व को मनाने के परम सौभाग्य का इस वर्ष यह दूसरा अवसर है। दिल्ली के सत्संग से बाहर अपने इस पुनीत पर्व को मनाने का सर्व प्रथम सौभाग्य श्री सिद्धगुफा योग प्रचार सभा सहारनपुर को ही १९६३ में प्राप्त हुआ था। इसका श्रेय केवल मात्र प्रातः स्मरणीय श्री गुरुदेव जी की अहैतुकी कृपा एवं दिल्ली निवासी सत्संगियों की सौजन्यता को है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उसी समय से आनन्दकंद श्री महाप्रभु जी की कृपा विशेष के फल स्वरूप ही यह पावन पर्व एक समारोह के रूप में अनेक सत्संग मण्डलों द्वारा मनाया जाने लगा है।

इस वर्ष भी अनाथनाथ श्री गुरुदेव की करुण कृपा एवं अहैतुकी कृपा के फलस्वरूप ही हमारी सभा को १६-१०-६९ से २६-१० ६९ तक के योग प्रचार कार्यक्रम की स्वीकृति प्राप्त हुई थी। इस प्रकार इसी योग प्रचार कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्हीं अहैतु की कृपा के फल-स्वरूप हमें श्री सद्गुरु जन्मोत्सव १९६९ को मनाने का सौभाग्य भी प्राप्त हो गया।

भव्य स्वागत

पूर्व निश्चित प्रोग्राम के अनुसार आनन्द-कंद श्री गुरुदेव भगवान मुरादाबाद से १५ अक्टूबर १९६९ तदनुसार आश्विन शुक्ला चतुर्थी की रात को सियालदह पठानकोट एक्सप्रेस से सहारनपुर पधारे। गाड़ी के आने में प्रायः डेढ़ घण्टा का विलम्ब हुआ किन्तु फिर स्टेशन पर स्वागतार्थ आये हुये नगर

ने बहुसंख्यक प्रतिष्ठित एवं धर्म प्रेमी सज्जन एवं सत्संगी पुष्प मालायें लिये धैर्य पूर्वक श्री नाथ जी की प्रतीक्षा में थे। गाड़ी के पहुंचते ही "श्री सदगुरुदेव भागवान की जय" "परम प्रभु रामलाल की जय" "श्री सिद्ध गुफा सवांई की जय" आदि गगन भेदी जय घोषों से सारा वातावरण गुञ्जायमान होकर एक अपूर्व भक्ति भावना से भर गया। सभा की ओर से श्रीयुगम दरदास और भाई श्री अमरनाथ जी ने और श्री नारायण मंदिर समिति की ओर से श्रीयुत इन्द्रसेन जी एडवोकेट ने श्री गुरुदेव भगवान को पुष्प मालाएं अर्पित करके साष्टांग प्रणाम किया। फिर क्या था पुष्प - मालाएं और दण्डवत् प्रणाम करने वालों का तांता ही लग गया। बड़ी कठिनाई से श्री गुरुदेव जी को जन समूह से निकाल कर श्री हरि संकीर्तन की सामूहिक ध्वनियों के साथ स्टेशन से बाहर लेकर आये जहां उनकी प्रतीक्षा में अनेक कारें खड़ी थीं और इस प्रकार श्रीनाथ जी ने रात्रि को लगभग ११ बजे श्री माहेश्वरी पंचायती मंदिर के अपने निवास स्थान में पदार्पण किया जहां पुनः उपस्थित बहनों और भाइयों ने तुमुल जय घोष और पुष्प वर्षा से स्वागत किया इसके पश्चात् स्वागत आरती सम्पन्न हुई और बाद में लगभग १२ बजे रात्रि तक श्री पं. गिरधर शर्मा ने भजन-संकीर्तन किया।

योग प्रचार की धूम

हमारे बहुत कुछ व्यक्तिगत एवं सामूहिक निवेदन के उपरान्त सहारनपुर के नव निर्मित श्री नारायण मंदिर की समिति के संयोजक श्री बाबू इन्द्रसेन जी एडवोकेट के आग्रह पर हम सबके परम सौभाग्य से कृपा-निकेतन श्री गुरुदेव जी ने अत्यंत कृपापूर्वक १६ अक्टूबर से २४ अक्टूबर तक योग प्रचार कार्यक्रम की स्वीकृति प्रदान की थी। निवास एवं प्रातः कालीन सत्संग एवं निःशुल्क यौगिक चिकित्सा के कार्यक्रम की व्यवस्था श्री महेश्वरी पंचायती मंदिर (खालापार सहारनपुर) में की गई थी और रात्रिकालीन सत्संग एवं प्रवचन श्री नारायण मंदिर (नारायण-पुरा भूतपूर्व मिल कालोनी) में रखे गये थे। दोनों कार्यक्रम अलग अलग स्थानों पर कुछ परिस्थिति वश ही रखने पड़े थे। श्री नारा- मंदिर में पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के पधारने की चर्चा ५-६ महीनों से चली हुई थी। श्री नारायण मंदिर के सत्संग भवन में अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगदगुरु योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण का वह भव्य चित्र था जिससे अर्जुन को गीतोपदेश करते हुये भगवान श्री कृष्ण के "तस्मात् योगी भवार्जुन:" के अमर आदेश से योग मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा भी निरंतर प्राप्त होती है। इसके उपरान्त प्रस्तुत कार्यक्रम की स्वीकृति के निमित्त कारण श्री बाबू इन्द्रसेन जी ही बने थे। अस्तु, प्रवचन का कार्यक्रम तो श्री नारायण मंदिर में निश्चित किया गया किन्तु पास में उपयुक्त निवास स्थान का प्रबंध न हो पाने के कारण निवास स्थान श्री महेश्वरी पंचायती मंदिर में रखा गया। इसी के कारण श्री नारायण

मंदिर के कार्यक्रम में सम्मिलित होने में सभी सत्संगियों को असुविधा अवश्य हुई होगी किन्तु उनके याता-यात के प्रबन्ध का भरसक, प्रयास करने पर भी शारदीय नवरात्रों की रामलीला दुर्गोत्सव और शाकम्भरी देवी की मेला यात्रा के कारण सचमुच प्रबन्ध नहीं हो पाया। उपरोक्त परिस्थिति में विवशता होते हुए भी, मैं सत्संगियों को हुए कष्टों के लिये सभा की ओर से क्षमा प्रार्थी हूँ।

योग-प्रचार के कार्यक्रम की धूम सहारन-पुर में ही नहीं अपितु दूर-दूर तक फैल गई थी। प्रातः कालीन सत्संग के उपरान्त होने वाले रोग निदान एवं निःशुल्क चिकित्सा के कार्यक्रम से लाभ उठाने दूर-दूर से असाध्य रोगों के रोगी आये और सैंकड़ों व्यक्तियों ने स्वास्थ्य लाभ लिया। प्रातः कालीन सत्संग का श्री गणेश सामूहिक ध्यानाभ्यास से होता था। इसके बाद ब्रह्मचारी ज्ञानारामजी श्री हरिनाम कीर्तन आरम्भ कराते थे। संकीर्तन के पश्चात् श्री प० गिरधरजी शर्मा संगीताचार्य एवं निर्देशक प० राधेश्याम शर्मा संगीताचार्य, श्री मायाराम जी, कुमारी उमा शर्मा और सौ० शशिप्रभा मित्तल का भक्ति भावना से ओत-प्रोत शास्त्रीय संगीत होता था तबले का संगत पं राधेश्याम शर्मा और कुमारी मीनाक्षी करता थीं। इनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण प्रणामी संकीर्तन मंडल के श्री राजेश जी के सद्गुरु तत्व पर मर्मभेदी भजन होते थे। लगभग ९ बजे आरती होती थी। तदन्तर दीक्षाओं के पश्चात् १० बजे से १२ बजे तक दोपहर तक असाध्य रोगों की निःशुल्क यौगिक चिकित्सा, व्यक्तिगत जिज्ञासा एवं मनोकामना की पूर्ति हेतु प्रसाद की इच्छा से आये हुए सज्जनों के एकान्त वार्तालाप का कार्यक्रम रहता था। दोपहर १२ बजे तक और उसके पश्चात् दोपहर ३ बजे से सायंकाल ६ बजे तक श्री गुरुदेव भगवान का दरबार दर्शनार्थियों के लिए खुला रहता था। प्रायः ३ बजे से सायं ६ बजे तक दर्शनार्थियों का मेला सा लगा रहता था। दस दिनों के संक्षिप्त से कार्यक्रम में भी अनेक दीक्षायें हुईं, सैंकड़ों रोगियों को लाभ हुआ और अनेकानेक लोगों की मनोकामनायें पूर्ण हुईं।

रात्रिकालीन सत्संग श्री नारायण मंदिर के भव्य सत्संग भवन में लगभग ७॥ बजे श्री हरिनाम संकीर्तन की हृदयग्राही ध्वनियों से आरम्भ हुआ करता था। उपस्थित समुदाय एक स्वर से संकीर्तन में सहयोग देता था। ८॥ से ९ बजे तक शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम में प० गिरधरजी शर्मा (संगीताचार्य एवं संगीत निर्देशक) पं० राधेश्यामजी शर्मा और संगीताचार्य श्री मायारामजी शर्मा द्वारा भक्ति-रस से परिपूर्ण भजनों द्वारा शास्त्रीय गायन प्रस्तुत किया जाता था। इस कार्यक्रम के पश्चात् लग-भग ८॥ बजे अखण्ड मण्डलाकार सद्गुरु तत्व के मूर्तिमान योगेश्वर महा-प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अत्यन्त उल्लास पूर्वक दिव्य आरती होती थी, जिसके

अन्त में " निर्वाणाष्टक ' के अन्तिम पद 'प्रभु-पाहि आपन् नमामीश शम्भो " की ध्वनि उच्चारणमें शक्तिपातके फलस्वरुप अनेक भाई बहनों की ध्यान स्थितियां बनती थीं। कार्यक्रम के अन्तिम दिन कुछ उदंड छात्रोंने ध्यान स्थितियों के मर्म को न समझ कर विघ्नउपस्थित करना चाहा किन्तु उसी दिन प्रवचन के अन्त में एक अपरिचित रिक्शा वाले की अनायास ही विलक्षण ध्यान स्थिति बनने से उनकी कुचेष्टाओं से पूर्ण शंकाओं का करारा जवाब मिल गया। श्री गुरुदेव जी के ओजस्वी किन्तु सरल भाषा में सारगर्भित प्रवचनों को ध्यान पूर्वक सुनते-सुनते वह रिक्शा वाला तल्लीन एवं चेतना शून्य हो गया। भस्त्रिका चलने लगी और उसे अत्यन्त तेजस्वी बालक के रूप में भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। मोरपंखी शिर पर शोभायमान थी। हाथों में वंशी लिये नूपुर की झंकार से मन को मोहते हुए नर्तन करते हुऐ कभी इधर कभी उधर दृष्टि-गोचर हुए। अपने आराध्यदेव को हठात् इस प्रकार अपने से अठखेलियां करते हुऐ देख कर वह रिक्शावाला साधक उनके चरणकमलों के स्पर्श करने की चेष्टा में सारे सत्संग भवन में इधर उधर लोट-पोट होता रहा और अन्त में जब अपने आराध्यदेव के चरण कमलों को पकड़ने में सफल हुआ तो स्थिर होकर उनके श्री चरण कमलों से लिपटा हुआ पड़ा रहा। कुछ ही क्षणों में चेतना खुली तो उसने अपने आपको भवन के मध्य में खड़े हुऐ पूज्य पाद श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों से लिपटा हुआ पाया। उसने अपना यह अनुभव सबके सामने निस्संकोच भाव से वर्णन करते हुए श्री गुरुदेव और भगवान श्री कृष्ण में अभेद बुद्धि को स्वीकारा।

उसी दिन गोपाल-नगर के सत्संगी भाई प्रोफेसर सुरेन्द्र कुमार खुराना के एक मित्र ने एक दिन पहले का अपना विलक्षण अनुभव मंच पर आकर सबको बताया। एक दिन पहले श्री सुरेन्द्र कुमार जी के घर पर सत्संग का आयोजन हुआ था। वहां उन सज्जन ने प्रथम बार श्री गुरुदेव जी के दर्शन किये थे। शुभ संस्कारों के फलस्वरूप ध्यान स्थिति बनी और उन्हें एक अलौकिक दिव्य दृश्य दिखाई पड़ा। उन्होंने देखा कि चारों ओर अनन्त तीव्र प्रकाश है। प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अचानक ही उसी दिव्य और तीव्र प्रकाश में से सहस्रों सूर्यों की ज्योति से भी अधिक प्रकाश मान भगवान श्री कृष्ण एक दिव्य रथ पर आसीन धीरे धीरे नीचे की ओर उतर रहे हैं और श्री गुरुदेव जी के आसन पर आकर विलीन हो गये और वह असहनीय प्रकाश पुञ्ज श्री गुरुदेव जी में से निकलता आभासित होने लगा। समय के अभाव में वे अपना अनुभव सविस्तार तो नहीं सुना सके किन्तु फिर भी भगवान श्री कृष्ण और श्री गुरुदेव की अभिन्नता का संकेत पर्याप्त रूप से कर गये।

पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी ने अपने १६

अक्टूबर से २४ अक्टूबर तक के नौ प्रवचनों में क्रमशः योग सम्बंधी भ्रमात्मक धारणाओं का निवारण, योग का वास्तविक स्वरूप क्या है, योग की महिमा, योगियों की अचिन्त्य शक्तियों का वर्णन आदि महासिद्धों और साधन सिद्धों के लक्षणों का निरूपण और अंतर एवं ऐतिहासिक उदाहरण, योग की सरलता और आवश्यकता, योग का व्यापक स्वरूप. ध्यान योग और सिद्धयोग की श्रेष्ठता, ईश्वराधना के अन्य सभी मार्गों का योगान्तर्गत होना एवं मन की एकाग्रता के सरल साधनों पर प्रकाश डाला। श्री महाराज श्री की वाणी स्वभाव से ही अत्यन्त ओजस्वी भाषा सरल विषय पर पूर्णाधिकार है फलतः प्रवचन अत्यन्त प्रभावशाली थे। जिस जिस ने श्री गुरुदेव भगवान के प्रवचन सुन लिये उनके हृदयों में श्रद्धा की अमिट छाप अंकित हो ही गई। प्रत्येक दिन अपने प्रवचन के उप-संहार स्वरूप श्री गुरुदेव जो नारायण मंदिर के सत्संग भवन में अंकित गीतोपदेश के भव्य चित्र की ओर संकेत करके योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज के व्यापक आदेश 'तस्मात् योगी भवार्जुनः' की पुनरावृत्ति कराकर पवित्र योग मार्ग को अप-नाने का आदेश दिया करते थे।

योग-प्रचार के इस कार्यक्रम ने सैकड़ों व्यक्तियों के हृदयों में श्रद्धा का बीज अंकुरित किया। सहारनपुर की जनता में पवित्रतम् योग मार्ग के प्रति जागृति और श्रद्धा उत्पन्न की तथा सैकड़ों व्यक्तियों को स्वास्थ्य लाभ के अतिरिक्त सैकड़ों व्यक्तियों को विभिन्न विभिन्न परमार्थिक एवं सांसारिक मनोकामनायें पूर्ण कराईं।

श्री सद्गुरु जन्मोत्सव समारोह १९६९

विजय दशमी पर्व श्री सद्गुरु देव भगवान के आविर्भाव की पावन तिथि आश्विन शुक्ला १० दिनांक २० अक्टूबर १९६९ को थी। बाहर के मंडलों से बहुत से सत्संगी भाई बहनों ने आकर हम लोगों का मान रखा और अपूर्व सत्संग लाभ लिया, किन्तु फिर भी बाहर के सत्संगी भाई बहनों की उपस्थिति वैसी नहीं थी जिसका हम लोग स्वप्न देख रहे थे भविष्य में संभव है श्री गुरुदेव भगवान की पुनः कभी कृपा हो गई तो यह स्वप्न भी पूरा हो जाये। बहुत से सत्संगी तो घरेलू दशहरा पूजन निमन्त्रण पत्र के अतिरिक्त व्यक्तिगत बुलाने के अभाव अथवा परिस्थिति वश नहीं आ सके। मेरे तुच्छ विचार में जो सत्संगी इस पावन पर्व में सम्मिलित नहीं हो पाये वे अपूर्व परमानन्द लाभ से तो वंचित रह ही गये अपितु अपने कर्त्तव्य से भी विमुख हुए। बहुत से सत्संगी भाईयों को तो पते के अभाव में निमंत्रण पत्र नहीं भेजे जा सके, और पतों के अभाव के कारण ही अधिकांश निमंत्रण पत्र विभिन्न मंडलों के संचालकों अथवा प्रमुख कार्य कर्त्ताओं के नाम से ही भेजे गये थे, इस त्रुटि के लिये भी मैं क्षमा-प्रार्थी हूं। फिर भी कार्यक्रम 'सिद्धयोग' में प्रकाशित हो ही चुका और सभी को ज्ञात हो

चुका था कि १६ अक्टूबर से २४ अक्टूबर के योग प्रचार कार्यक्रम के अन्तर्गत विजय दशमी का श्री सद्गुरु जन्मोत्सव समारोह २०-१०-६९ को सहारनपुर में ही मनाया जावेगा।

प्रातः काल ही से हरिनाम संकीर्तन के उपरान्त पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी ने आनन्द-कंद श्री महाप्रभु जी महाराज का पूजन करके उनकी आरती सम्पन्न की। इसके पश्चात् श्री सद्गुरु जन्मोत्सव समारोह का विशेष समारम्भ श्री गणेश संगीताचार्य पं० गिरधर शर्मा ने यह बधाई गाकर किया

सखि आज कैसी मनोहर घड़ी है।
जो दशमी विजय की यहां आ पड़ी है॥
बधाई है उनको, बधाई है हमको,
बधाई नगर के सकल वासियों को,
तोड़न को माया-मोह फाँसियों का,
यह शक्ति जो अद्भुत यहां आ खड़ी है।
सखि आज कैसी मनोहर घड़ी है॥
बधाई तरफ को तरफवासियों को,
बधाई विजय दशमी की राशियों को,
जो शक्ति मिली योग अभ्यासियों को,
प्रभु जन्म की आज पावन घड़ी है।
सखी आज कैसी मनोहर घड़ी है॥
हुआ आज था अन्त रावण का भारी,
हुई जीत सत् की असत् शक्ति हारी,
वही सत् की शक्ति है गुरुवर ने धारी,
श्री सद्गुरु में ही सत्यसत्ता जड़ी है।
सखी आज कैसी मनोहर घड़ी है॥
परमपूज्य ब्रह्मा शंकर गोविन्दा,
सदाशिव गुरु उनके हैं परमानन्दा,
उन्हीं की कृपा से ये हैं भक्तानन्दा,
ये देखे वही जिसमें भक्तिभरी है।
सखि आज कैसी मनोहर घड़ी है॥
सौभाग्य हमारा श्री गुरुवर पधारे,
स्वागत करें क्या हम सब विधि हारे,
स्वीकारो श्रद्धा के पुष्प हमारे,
श्री तर्केश की हम पै किरपा बड़ी है।
सखी आज कैसी मनोहर घड़ी है॥

इस बधाई के समाप्त होते ही बैण्ड बाजे के साथ साथ शहनाई बज उठी। समय की कमी के कारण बार बार संकेत करने पर भी बैण्ड वालों ने बधाई की तीन ध्वनियां बजा कर ही शहनाई वादन समाप्त किया। शह-नाई के उल्लेख में पं. मायाराम जो संगीता-चार्य द्वारा सुनाई गई बाजे-बाजे बाजे शहनाई दशरथ के अंगना, भूल रहे पालने में वोह राम ललना-शहनाई वादन सबको याद आया पं० गिरधर शर्मा को बधाई सुनकर श्री गुरुदेव जी का मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और

उल्लास से भर गया । श्री मायाराम जी का शहनाई गीत भी श्री महाराज जी को बहुत प्रिय लगा था ।

मंगलाचरण और पूजन

अब कर्मनिष्ठ शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों ने उच्चस्वर से वेदमंत्रों द्वारा स्वस्तिवाचन करके मंडप के नीचे अत्यंत सुसज्जित रंग-बिरंगी वेदी पर लगे भव्य आसन पर विराजमान होने के लिये श्री गुरुदेव भगवान को आमंत्रित किया । गगनभेदी जयकारों के मध्य श्री गुरुदेव भगवान पूजन के आसन पर विराज गये । विज्ञ ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों द्वारा मंगलाचरण उच्चस्वर में गाया और श्री गुरुदेव भगवान जी से पूजन का संकल्प लेकर क्रमश-श्री गणेश जी जलकलश, नवग्रह षोडश मात्रिका, दश दिक्‌पाल पंच लोकपाल आदि का आवाहन स्थापन एवं पूजन सम्पन्न कराकर श्री गुरुदेव भगवान को पाद्य अर्घ्य एवं आचमन समर्पण करके शुभासन पर विराजमान कराया ।

सत्संगी बहनों ने मंगल गान आरम्भ किया और सत्संगी भाइयों ने पूर्ण व्यवस्थित रूप से पंक्तिबद्ध होकर बारी-बारी हाथ को धोकर अत्यंत सौम्य और मनोहर रूप से विराजमान श्री गुरुदेव भगवान को पंचामृत स्नान कराया । पंचामृत के पश्चात् शुद्ध-जल एवं गंगाजल से स्नान कराकर नवीन वस्त्र धारण कराकर पुनः पूजासन पर विराजमान कराया और केशर मिला चन्दन का तिलक अर्पण किया गया । बहनों का मंगल गान चल रहा था और उसमें पूजन के प्रत्येक क्रम का वर्णन किया जा रहा था ।

गाओ जी सब मिल गाओ मंगल गाओजी
अपने प्रभु जी को अर्घ्य चढावो जी
जिन चरणन से निकसी है गंगा
प्रेम सहित वोही चरण धुवाओ जी
ब्रह्म कमंडल गंग समाई
वोही कमलकर आन धुवाओ जी
जिस श्री मुख से प्रकटी श्रुतियां
श्रद्धा से आचमन कराओ जी
वही गंग शिव जटा समाई
तीर्थोदक से स्नान करावो जी
गुरु मेरे ब्रह्मा विष्णु शिव हैं
पंचामृत से स्नान करावो जी
गुरु मेरे स्वामी सर्वेश्वर हैं
गंगोदक से स्नान करावो जी
योगेश्वर सिद्धेश यही हैं
सौम्य वस्त्र धारण करावाओ जी
गुरुवर त्रिगुणातीत महेश्वर
केशर चन्दन तिलक लगावो जी
दीनानाथ दयाल दयानिधि
सुन्दर सी माला पहनावो जी
अशरण शरण अनाथ नाथ प्रभो
भक्ति का दीपक मन में जलाओ जी
योगेश्वर तरकेश यही हैं

मंगल आरती सब मिल गाओ जी

इस प्रकार मंगल गान के साथ श्री गुरुदेव जी का स्नान एवं पूजन सम्पन्न हुआ। वेदमंत्रों से हवन की अग्नि प्रज्वलित कराई गई और महामृत्युञ्जय के मन्त्रों से हवन कराया गया। श्री गुरुदेव भगवान जी के साथ साथ सभी सत्संगियों ने पूर्णाहुति दी। घृत की सहस्रधारा के साथ हवन सम्पूर्ण हुआ और पुरुष सूक्त के मंत्रों से विप्र ब्राह्मणों ने श्री गुरुदेव जी का अभिषेक करके नव ग्रहादि का विसर्जन किया। श्री सिद्ध गुफा योग प्रचार सभा की ओर से सामूहिक भेंट करके सभी सत्संगियों ने श्री गुरुदेव भगवान की सामूहिक आरती की। इसके उपरान्त व्यक्तिगत तिलक प्रारम्भ हो गये।

दोपहर १२ बजे के लगभग ब्रह्म भोज के उपरान्त यथा साध्य सूक्ष्म रूप से प्रीति भोज (भण्डारे) का आयोजन किया गया था।

१९ अक्टूबर को पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी दोपहर को शामली चले गये थे, जहां हनुमान टीले के मंदिर के जीर्णोद्धार के उपलक्ष में एक विशाल सत्संग का आयोजन था जिसमें पूज्यपाद जगद्गुरु शंकराचार्य श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज जैसी महान विभूतियां आई हुई थीं। सबके प्रबल आग्रह पर श्री गुरुदेव जी ने अपने योग सिद्धान्तों पर एक ओजस्वी भाषण दिया।

आश्विन शुक्ला १२ दिनांक २१ अक्टूबर को श्री गुरुदेव जी ने सभी सत्संगियों के साथ श्री शाकम्भरी देवी के सिद्धपीठ की यात्रा की एवं दर्शन किये।

गोपाल नगर के सत्संगियों के विशेष अनुनय विनय पर एक दिन भाई चमनलाल जी के घर एक दिन भाई सुरेन्द्रकुमार के घर और एक दिन भाई सिकन्दरलाल जी के आदर्श नगर के नये मकान में श्री गुरुदेव की उपस्थिति में सत्संग का आयोजन हुआ।

इस प्रकार सहारनपुर में योग प्रचार कार्यक्रम का यह अभियान पूर्णरूप से सफल रहा।

अतीव श्रद्धा और भक्ति भावना का जो अंकुर इस योग प्रचार कार्यक्रम के फलस्वरूप परम कल्याणधन श्री गुरुदेव भगवान ने प्रस्फुटित किया है आशा है कि भविष्य में उसका सिंचन नियमित समय पर योग प्रचारका कार्यक्रम प्रदान करके करते रहेंगे।

इन्दौर, कछवा, बरेली, मुरादाबाद, लखनऊ, दिल्ली, मुजफ्फरनगर, टूण्डला, गाजियाबाद बुलन्दशहर, शामली, नानौता, नकुड, साढ़ौरा, कुरुक्षेत्र, अम्बाला, ऋषिकेश चण्डीगढ़ तथा अमृतसर से आये हुए सत्संगी भाई-बहनों का आभार प्रदर्शित करता हूँ जिन्होंने पधार कर हमारे कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई और सत्संग लाभ लिया। उनसे प्रबंध की त्रुटियों के कारण हुए कष्ट के लिये क्षमा प्रार्थी हूं।

चंडीगढ़ में–

योग प्रचार का कार्य-क्रम

(हमारे अपने संवाद दाता द्वारा)

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष श्री सद्-गुरुदेव ने योग प्रचार कार्य-क्रम की स्वीकृति शारदीय नवरात्रों के पूर्व ही २५ अक्टूबर से ६ नवम्बर तक के लिये प्रदान की थी। सहारनपुर में योग प्रचार कार्य-क्रम में शामिल हुए सत्संगियों को रोता-बिलखता छोड़ कर परम कृपानिकेतन श्री गुरुदेव जी २५ अक्टूबर को दोपहर १-३० बजे वाली गाड़ी से अत्यंत भाव भीनी विदाई के पश्चात् चलकर अम्बाला छावनी सायंकाल लगभग सवाचार बजे पहुचे थे। श्री महाराज जी के साथ ब्रह्मचारी केशवदेव जी के अतिरिक्त सवाई ग्राम के ठाकुर पातीराम, कछवा के बाबू स्वामी-प्रसा द सिंह एडवोकेट, बरेनी के बाबू महेन्द्र-नारायण जी कोटपर, शामली के प्रोफेसर अजबसिंह जी प्रोफेसर वीरेन्द्र सिंह वर्मा नानौता के भाई बृजमोहन जी शर्मा वाशिष्ठ एवं भाई जबरसिंह जी और आदि सहारनपुरसे भाई जुगमंदरदास जी भाई अमरनाथ जी और भाई दयाराम जी थे। श्री महाराज जी को लिवाने चंडीगढ़ से सर्व श्री ओम-प्रकाश जी शर्मा, निरंजनदेव जी चोपड़ा मोहन कालिया, अम्बाला छावनी स्टेशन पर उपस्थित थे। जय-जय कार के साथ पुष्प मालायें पहना कर सबने श्री महाराज जी का स्वागत किया। स्टेशन पर उपस्थित कार में श्री महाराज जी के साथ ब्रह्मचारी केशव-देव व अन्य दो-तीन सत्संगियों को लेकर भाई ओमप्रकाश जी शर्मा चंडीगढ़ के लिये प्रस्थान कर गये। शेष सत्संगियों को लेकर श्री निरंजनदेव जी चोपड़ा व श्री मोहन जी कालिया बस द्वारा चण्डीगढ़ पहुंच गये।

हार्दिक स्वागत

जिस समय श्री महाराज जी की कार सैक्टर १८ के मुख्यद्वार पर पहुंची चण्डीगढ़ मंडल के सभी सत्संगी भाई बहन बैण्ड बाजे के साथ पुष्प मालायें लिये उपस्थित थे। श्री महाराज जी के पहुंचते ही बैंड वालों ने स्वागत की मधुर धुन बजानी प्रारंभ की। सत्संगी भाई बहनों ने जयकारों के साथ पुष्प मालायें अर्पित करके बारी-बारी से श्री महाराज जी को साष्टांग प्रणाम किया। बैण्ड बाजे के पीछे श्री महाराज जी की कार और उसके पीछे सभी सत्संगी भाई बहनों का जलूस मंथर गति से भाई ओमप्रकाशजी शर्मा के क्वा-टर नं० डी ५४ पहुंचा। वहां बहनों ने तेल उतार कर अनेक दीपकों से सुसज्जित रंग बिरंगी आरती से श्री महाराज जी की आरती उतारी उस दिन रात्रि के संक्षिप्त

कार्यक्रम में संकीर्तन और आरती के पश्चात् श्री महाराज जी ने वहाँ के सत्संगियों की भक्ति भावना की सराहना करते हुऐ सत्संग में पारस्परिक प्रेम सहयोग और एकता के महत्व को जोरदार शब्दों में समझाया।

दैनिक कार्यक्रम

प्रातःकाल सत्संग भजनों और संकीर्तन से प्रारंभ होता था। ८॥ बजे तक श्री महाराज श्री आरती का कार्यक्रम निपटा दिया करते थे, जिससे विश्व-विद्यालय के कर्मचारी सत्संगीगण अपने अपने कार्यालयों में जा सकें।

मध्याह्न काल का समय प्रायः विश्राम का खाली रहता था। जिज्ञासु सत्संगी गण श्री महाराज जी के दर्शनार्थ एवं व्यक्तिगत समस्याओं के निवेदनार्थ एवं समाधान हेतु लालायित रहते थे। भाई ओमप्रकाश जी शर्मा सदैव ही प्रयत्नशील बने रहते थे कि श्री महाराज जी के मध्याह्न कालीन विश्राम में बाधा उपस्थित न हो।

रात्रिकालीन सत्संग श्री हरिनाम संकीर्तन से प्रायः ८ बजे प्रारंभ होता था। बहिन विमला देवी शर्मा भी अपने भावभीने भजन प्रभु सेवा में अर्पित करती थी। बड़े ही उल्लास पूर्वक आरती सम्पन्न होती थी और आरती के अन्त में "निर्वाणाष्टक" के अन्तिम पद 'प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो' की सामूहिक ध्वनि उच्चारण में अनेक भाई बहन एवं बालक बालिकाओं की विलक्षण एवं अपूर्व ध्यान स्थिति बहिन मनोरमा सूद की होती थी। नेत्र इस प्रकार बंद रहते थे मानो उनकी पलकें चिपकी हुई हों। बंद नेत्रों के अन्दर पुतलियाँ एक दम उल्टी होकर ऊपर की ओर चढ़ी होती थीं। फलस्वरूप वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने पर अन्तर्दृष्टि से अलौकिक दिव्य दृश्यों के मध्य धारा प्रवाह श्री गुरुदेव भगवान के विशुद्ध तैजस स्वरूप में तल्लीन रहा करती थी। यही कारण है कि पूर्णतया नेत्रों के मुँदे होने पर भी वे उनका अनुकरण करने में सफल रहती थी। जैसे ही श्री गुरुदेव भगवान अपने आसन से उठकर चलने को तैयार होते थे अथवा चल ही पड़ते थे, बहिन मनोरमा जी भी ठीक उसी प्रकार चलने के लिये ध्यानस्थ अवस्था में ही उठ खड़ी होती थी अथवा उनके ठीक पीछे पीछे उन्हीं के चरणचिन्हों का अनुकरण करती हुई उपस्थित जन समूह को चीरती हुई चल देती थी। कदाचित् श्री गुरुदेव जी उन्हें आदेश देते थे कि शक्ति अमुक स्थान से आये हुए अमुक व्यक्ति को बुला लाओ तो तत्काल ही पूरे जनसमुदाय को पार करके उसी व्यक्ति के समीप जा खड़ी होती थी। उदाहरणार्थ, श्री गुरुदेव भगवान ने एक दिन आज्ञा दी, 'शक्ति, सहारनपुर से ओमप्रकाश मित्तल आए हुए हैं, उन्हें हमारे पास बुला लाओ'। आज्ञा प्राप्त होने की देर थी कि शक्ति स्वरूपा बहिन मनोरमा सूद विशाल जन समूह में से होती हुई भाई ओमप्रकाश मित्तल (जो एक सत्संगी भाई की ओट में हो गये थे) के पास पहुँच गई।

चंडीगढ़ का सत्संग विद्वत्समाज का सत्संग है। सैक्टर १४ विश्व-विद्यालय का

क्षेत्र है। यहां के श्रोताओं में अधिकांश पंजाब विश्व विद्यालय के प्राध्यापक विद्यार्थी अथवा कर्मचारी होते हैं। तर्क बुद्धि की मात्रा के आधिक्य के कारण नये श्रोताओं के मन में ध्यानस्थितियों के प्रति किंचित शंका का पुट देखा गया है। ऐसे भावों को लक्ष्य करके श्री गुरुदेव जी ने कई बार बहिन मनोरमा सूद के बंद नेत्रों की पलकों को पलटकर सबको यह दिखाया कि बहिन जी के नेत्रों की पुतलियां इस प्रकार अन्दर की आर पलटी हुई हैं कि चेतन अवस्था में भरसक प्रयत्न करने पर भी उस प्रकार पुतलियों को अन्दर की पलटना कठिन ही नहीं अपितु असंभव ही है।

आरती के उपरान्त श्री गुरुदेव भगवान के योग सिद्धान्तों पर सारगर्भित भाषण सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता था.

श्री गुरुदेव जी ने विभूति - योग की व्याख्या करके संयम के महत्त्व एवं संयम द्वारा अर्जित शक्तियों का वर्णन करते हुये योग-विद्या के उस विज्ञान का रहस्य समझाया जिससे संयम के द्वारा ही सिद्ध योगी राज दूर दर्शन दूर, श्रवण, दूर गमन आदि अदभुत शक्तियों के स्वामी बन जाते हैं। संयम की व्याख्या करते हुए श्री गुरुदेवजी ने जहाँ यह बताया कि 'त्रयम् एकत्र संयमः' अर्थात् मन की तीन अवस्थाओं धारणा ध्यान एवं समाधि को एक लक्ष्यस्थान पर एकत्रित करने को संयम कहते हैं, वहां धारणा ध्यान और समाधि की सविस्तार व्याख्या की। धारणा के परिभाषा सम्बन्धी सूत्र 'देशबंधः चित्तस्य धारणा' अर्थात् किसी एक लक्ष्यस्थान पर चित्तवृत्तियों के बांधने को ही धारणा कहा है। वह लक्ष्य स्थान साधक की रुचि एवं श्रद्धा के अनुसार साधक के इष्टदेव अथवा प्रियतम वस्तु हो सकती है। उन्होंने 'रामबन्धः चित्तस्य धारणा' 'शिवबन्धः चित्तस्य धारणा' 'कृष्ण बन्ध चित्तस्य धारणा' इत्यादि लक्ष्यस्थान को सीमित करने वाले सूत्रों एवं धारणा की परिभाषा न करके 'देशबन्धः चित्तस्य धारणा' के सूत्र से ही धारणा की व्याख्या की है जिससे लक्ष्यस्थान का क्षेत्र असीमित एवं सभी मतमतान्तरों के मानने वालों के लिए अपनी अपनी रुचि और श्रद्धा के अनुसार लक्ष्यस्थान चुनने का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार पवित्र योग मार्ग का सार्वभौम होना सिद्ध होता है।

श्री गुरुदेव भगवान ने लाल लाल सब कोई कहे सबकी गठरी लाल, गांठ खोल नहीं जानते ता बिध भये कंगाल, की सतवाणी के तथ्यके आधार पर यह स्पष्ट कर के समझाया कि प्रत्येक व्यक्ति की गठरी में लाल हैं अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के अदर अपरिमित शक्ति का भंडार निहित है किन्तु उस गठरी की गांठ खोलने की विधि से अनभिज्ञ होने के कारण लालों का खजाना पास होते हुए भी कंगाल हैं अर्थात् उस अन्तर्हित अपरिमित शक्ति के उपयोग की विधि से अनभिज्ञ होने कारण अपरिमित शक्ति पास होने पर भी हम दीन बन जाते हैं। यह अमर योग विद्या ही है जो

हमें उस अपरिमित अन्तर्हित शक्ति का स्वामी बनने की विधि बताकर 'अदीनस्याम शरदः शतम्' वालों की श्रेणी में स्थान दिलाता है। यह सब मन की एकाग्रता से संभव हो सकता है। मन अत्यन्त चंचल है इसका बांधना अथवा एकाग्र करना दुष्कर भले ही हो असम्भव नहीं है। सद्गुरु कृपा से मन की एकाग्रता सहज में ही बन जाती है। अन्त में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण का व्यापक आदेश तस्मात् योगी भवार्जुन: सुनाकर सबको पवित्र योग मार्ग अपना कर अपना कल्याण करने की सुमति प्रदान की।

रात्रि कालीन सत्संग के अंतिम दिन दिनांक ५ नवम्बर १९६९ को प्रवचन से पूर्व कुमारी शशि शर्मा, कुमारी अमिता शर्मा, कुमारी नालम, कुमारी मोनाक्षी मित्तल एवं अन्य सत्संगी बालिकाओं ने शास्त्रीय संगीत का भक्ति पूर्ण और रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किया श्री चरणों पर न्यौछावर इन बालिकाओं ने समय समय पर अन्य दिनों को भी शास्त्रीय संगीत में अनेकों भजन श्री सेवा में प्रस्तुत किये और श्री महाराज जी ने बालिकाओं के उत्साह वर्धन के लिये पुष्प मालाओं का प्रसाद भी दिया। श्री गुरुदेव जी को शास्त्रीय संगीत में अत्यंत अभिरुचि है और रागों और तानों के पूर्ण ज्ञाता होने के कारण मीरा सूर कबीर आदि के पद एवं श्री प्रभु महिमा के भजनों को शास्त्रीय संगीत में सुनकर ही अधिक आनन्दित होते हैं।

उपसंहार

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी चण्डीगढ़ की सत्संगी बहनों को करवा चौथ के व्रत का पारायण श्री गुरुदेव जी के अभयप्रद श्री चरणकमलों की वन्दना करके करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। करवा चौथ का व्रत सौभाग्यवती देवियां अपने पति की मंगल कामना हेतु करती हैं। श्री गुरुदेव भगवान के मंगलमय एवं चतुर्वर्ग प्रदायक श्री चरण कमलों की वन्दना करके व्रत का पारायण करने पर अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति में सन्देह ही नहीं रहता। यही कारण है कि यहां के सत्संगी परिवारों में आरोग्यता सुख एवं समृद्धि का स्थायी वास है।

२५ अक्टूबर से ६ नवम्बर १९६९ तक सैक्टर १० में सत्संग की धूम मची रहा। श्री गुरुदेव भगवान के सामने सदैव ही भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। अपूर्व भक्ति और प्रेम विलक्षण वृष्टि से भावना की हरियाली चारों ओर लहलहा उठी थी। इस पवित्र अवसर के स्मारक रूप में सभी सत्संगी परिवारों ने श्री चरणों में बैठ कर अपने अपने चित्र खिचवाये और इसी कारण प्रायः प्रत्येक दिन ही सत्संग के साथ-साथ चित्र खिचवाने का कार्य क्रम भी रहता था

अन्त में ६ नवम्बर १९६९ की सायं काल हृदय विदारक विदाई की वेला आ ही गई। श्री महाराज जी के प्रस्थान का कार्यक्रम अर्ध रात्रि को कालका हावड़ा मेल से निश्चित हुआ

था। अस्तु, भाई ओमप्रकाश जी शर्मा ने विदाई की आरती का समय दोपहर दो बजे सूचित किया था किन्तु कौन श्री महाराज जी को विदा करना चाहता था ? फिर भी ना चाहते हुए भी सायं-कल के समय रात्रि-कालीन आरती के साथ ही विदाई की आरती हुई। आनन्दकंद श्री महाप्रभु जी की आरती के पश्चात् सभी सत्संगियों ने कल्याण धन श्री गुरुदेव भगवान को विदाई की आरती की और स्टेशन पर पहुंचने वाले सत्संगी स्टेशन पर पहुंचने लगे। गाड़ी के समय आनन्दकंद श्री गुरुदेव भगवान् के साथ कुछ सत्संगियों को लेकर भाई ओमप्रकाश जी शर्मा कार द्वारा स्टेशन पहुँचे तो आगे चोपड़ा परिवार एवं अन्यान्य सत्संगी गण उपस्थित मिले। अविरल अश्रुधारा बहाते हुऐ सभी सत्संगियों ने जयकारों और पुष्प वर्षा के साथ श्री महाराज जी को विदा किया। विदाई की इस बेला की तुलना द्वापर युग में वृन्दावन से मथुरा के लिये श्री अक्रूर जी के साथ प्रस्थान करते हुए भगवान श्री कृष्ण की विदाई है जब गोप-गोपियाँ रथ के आगे लोट लोटा कर रथ को रोकना चाह रहे थे।

गुरुदेव वचनामृत

आज का मानव

आज का भोग-विलासी मानव विषय रूपी मदिरा को पीकर उसके नशे में इतना चूर है कि उसे अपना हित तथा अहित भी नहीं सूझता। उसे विषय रूपी मदिराने अचेत बना दिया है। जैसे बेहोशी में चेतना अर्थात् ज्ञान नष्ट हो जाता है और मनुष्य नहीं जानता कि मैं कौन हूं और मुझे क्या करना चाहिए। इसी प्रकार मानव भी इस विषय रूपी मदिरा को पीकर बेहोश हो स्वयं को तथा अपने कर्त्तव्य पथ को भूल चुका है। लक्ष्य को भूलकर ही आज के मानव का रहन सहन तथा-विहार विलास पूर्ण व अमानवीय बन चुका है। वह अपने विलासी व भोगी जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अमानवीय कर्मों को भी करता पाया जा रहा है। आज के मानव की निरर्थक आवश्यकता इतनी बढ़ती जा रही हैं कि जिनकी पूर्ति के लिए वह रात-दिन कोल्हू के बैल की तरह काम में लगा रहता है और जिसके परिणाम स्वरूप वह अन्दर से चिन्ताओं के घुन द्वारा खोखला होता चला जा रहा है।

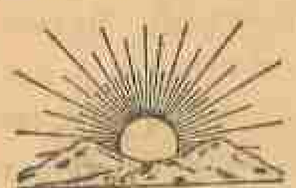

श्री गुरुदेव जी का आगामी कार्य्यक्रम

दिनाङ्क	विवरण
११-१२-६९ को	आश्रम से दिल्ली के लिए प्रस्थान
११-१२-६९ से १४-१२-६९ तक	नेताजी नगर, नई दिल्ली में योग-प्रचार कार्य क्रम पता :- द्वारा श्री देवीसिंह जी बी ७५ नेताजी नगर, नई दिल्ली - ३
१५-१२-६९ से २५-१२-६९ तक	मंदिर गुदडियान, बाग्हदरी सदर-बाजार दिल्ली में योग प्रचार कार्यक्रम
२६-१२-६९ को	आगरा के लिए प्रस्थान
२६-१२-६९ से ४-१-७० तक	आगरा में योग प्रचार कार्यक्रम पता :— डा० एल. एम. शर्मा ए. एम. ओ. एफ १०४ रेलवे क्वाटर आगरा कैन्ट
५-१-७० को	आगरा कैन्ट से दतिया को प्रस्थान
६-१-७० से १२-१-७० तक	दतिया में योग—प्रचार कार्यक्रम पता :— चन्द्रवाटिका सर्किट हाउस के पीछे, स्टेशन रोड दतिया।

उपरोक्त कार्यक्रम निश्चित् ही है। फिर भी श्री गुरुदेव जी की सुविधा और आज्ञानुसार इसमें आवश्यक परिवर्तन भी किया जा सकता है। इससे आगे का कार्य क्रम आगामी पत्रिका में प्रकाशित होगा।

— व्यवस्थापक

विवेक और वैराग्य

विवेक और वैराग्य दोनों में अविरत मित्रता है एक के बिना दूसरा अधूरा और अपंगु ही रहता है। समर्थ स्वामी रामदास ने इनका विवेचन इस प्रकार किया है —

यदि किसी को बहुत बड़ा सौभाग्य या वैभव प्राप्त हो और वह उसका भोग करना न जानता हो तो उसकी क्या दशा होगी ? ठीक वही दशा उसकी भी होती है जिसके मन में वैराग्य तो हो जाता है पर विवेक नहीं होता।

जब मनुष्य घर-गृहस्थी की अनेक प्रकार की झंझटों से बहुत ऊबता और दुःखी होता है और वह अनेक प्रकार के संकटों में आता है तब उसके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है और वह घर-बार छोड़कर निकल जाता है। वह चिन्ता और परवशता से छूट जाता है और दूसरों का त्याग करके उसी प्रकार स्वतन्त्र हो जाता है जिस प्रकार रोगी रोग से मुक्त होकर स्वस्थ हो जाता है। परन्तु उस दशा में उस मनुष्य को बहुत सावधान, शुद्ध-बुद्ध, सदाचारी, संयमी और [illegible] होना चाहिए। विवेक इन सब बुराइयों की ओर जाने से रोकता है। विवेक के बिना जो वैराग्य होता है उसमें अविवेक के कारण अवगुण ही होता है और दोनों ही ओर उसका सब कुछ बिगड़ जाता है। न उससे गृहस्थ धर्म का पालन होता है न परमार्थ ही हो पाता है।

× × ×

बिना वैराग्य हुए सिर्फ ज्ञान छाँटना वैसा ही है जैसे कारागार में बंद पड़े रहकर अपने पराक्रम की बातें हाँकना।

× × ×

जब विवेक के द्वारा मन की सब चिन्ताएँ छूट जाती हैं और वैराग्य के कारण मनुष्यों के सब झंझट दूर हो जाते हैं तब वह अन्दर बाहर दोनों ओर से मुक्त होकर निर्भयगामी हो जाता है।

([redacted])

मुद्रक—[illegible]